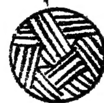
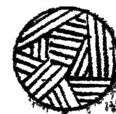
धूप करे हस्ताक्षर



सियाराम मिश्र

धूप के हस्ताक्षर



सियाराम मिश्र

प्रतिमा प्रकाशन
१२१ शहरारा बाग इलाहाबाद

प्रकाशक प्रतिमा प्रकाशन
१२१ शहरारा बाग इलाहाबाद।

संस्करण प्रथम १९९९

मुद्रक राजीव आफसेट इलाहाबाद।

मूल्य एक सौ पच्चीस रुपये मात्र

आत्म निवेदन

गीत लिखा नही जाता है लिख जाता है । तीस वष पूर्व अनामा नाम से एक गीत सग्रह छपा था। अनामा यौवन काल की विसगतिया की टेढी-मेढी रागात्मक अभिव्यक्ति भर था। तीस वर्ष के अन्तराल मे अनेक प्रबन्ध काव्यों तथा कविताओ का सृजन हुआ परन्तु चाहने पर भी गीत नही लिखा जा सका। मुझे लगा जब सम्वदना अधिक गहरी हुयी तो गीत फूट पडा। जब जब व्यक्तिगत सम्वेदना ने हृदय को झकझारा तो कवि का कवि गा उठा। समालाचक भल हा उन गीतों को परम्परा बाध स युक्त कहे किन्तु मै ता उन्हे निजी या व्यष्टि स समष्टि की राह पकडती हुयी यात्रा ही कहूँगा। यद्यपि सोचत और अभिव्यक्ति दत समय एसा लगता था कि कवल म ही उस तरह से सोच रहा हूँ परन्तु कुछ समय बाद यह अनुभव होता था कि यह ता सामान्यीकन पीडा है। जब जब समष्टि का व्यष्टि स्तर पर चिन्तन हुआ तो तथाकथित नवगीत ने जन्म लिया है। गीत आर नवगीत के बीच में कोई अग्नि रखा खीच देना बहुत सार्थक नही ह क्योकि किसी न किसी रूप मे परम्परा बाध के गीता म ना सामाजिक राजनीतिक बाध मुखर हुआ ह। यह बात अवश्य है नवगीत न सामाजिक सरोकार को अधिक जिया है।

धूप करे हस्ताक्षर म कुछ नई कविताएँ भी सग्रहीत हैं। उन रचनाआ को मैं हृदयाकाश म इतस्तत बिखरे जलभर बादल ही मानता हूँ। ये रचनाएँ तुकबन्दी हीन हात हुए [illegible] लयात्मकता म युक्त हैं। किसी घटना या परिदृश्य या मानवतर प्रकृति के किसी अग उपाग न जब मन को छुआ तो उत्पन्न कविता का रूप ले लिया। यहाँ भी कविता के लिये कविता नही है। काव्य क सम्बन्ध मे मेरा व्यक्तिगत [illegible] चिन्तन है कि कवि एक ही विधा म अपनी सामर्थ्य भर लिखने क बाद [illegible] शब्द क्षितिज का विस्तार देने हेतु मन स्थिति तथा कथ्य के अनुरूप अन्य [illegible] का आश्रय परमावश्यक हा जाता ह। हाँ सभी विधाओ मे सिद्धि तो विरल ह। मुझ [illegible] तो किसी विधा म नही मिली परन्तु माता क प्रसाद की भाँति काव्य की जा भी [illegible] प्राप्त हुयी उसे समाज म वितरित करने का लाभ सवरण न कर सका। माँ की कृपा म टूटी फूटी पक्तियाँ जोड लेना अलग बात है परन्तु अच्छा विद्यार्थी न रहन क कारण [illegible]। [illegible] कमजोर नीव पर खडे अब गिरे तब गिरे गली के मकान स अधिक नही ह। इस तथ्य को खुले दिल स उजागर कर देने मे मुझ कभी हिचक नही होती है उक्त स्वीकारोक्ति मे मुझे आत्म तोष मिलता है इससे अधिक और क्या देते तुमने मुझे सरलता द दी ।

अपन काव्य क विषय म अधिक कहना लिटन ... यह तो सुधी पाठको तथा विज्ञ समालोचको का काम है ... प्रभु आश्रित पथ है ... रूकने से बढना अच्छा है इस आ ... यात्रा के मार्ग के निकटस्थ साहित्य ... प्रेरणा ... हैं जिनके भरोसे यह साहित्यिक जीवन यात्रा गतिमान रही

श्रद्धेय डॉ विद्या निवास मिश्र डॉ ... विनोद डॉ सूर्य प्रसाद दीक्षित साहित्य मर्मज्ञ रमेशचन्द्र दीक्षित ... साहित्यकार श्री एम सी द्विवेदी आई पी एस ... महामंत्री श्री ... शास्त्री बड भाई विष्णु कुमार त्रिपाठी ... तथा सहानुभूति मेरा सम्बल है। स्वर्गीय प राजाराम मिश्र ... देवगत साहित्यकार बाबू अनन्तराम पुरवार की अपरोक्ष शुभकामना ... ज्योति स्तम्भ हैं।

डॉ प्रकाश द्विवेदी डॉ आनन्द मगल वाजपेयी ... मिश्र कविवर वारिश काव्यायन नई कविता के शक्त हस्ताक्षर लीलाधर ... सीताराम अग्रवाल हितेन्द्र अग्निहोत्री डॉ यतीन्द्र तिवारी का कवि विशेष ऋणी है

श्री पी आर सिंह जी डॉ डी एस मलिक डॉ देवन्द्र मिश्र श्रीकान्त तिवारी कान्त सन्तकुमार बाजपेयी सन्त श्री राम मधुकर श्री राम कुमार गुप्त के प्रति विशेष आभार है जो स्थानीय स्तर पर सहयोग प्रदान करते रहते हैं। कु मनीषा पुरवार ने पाण्डुलिपि बनाने मे सहायता की है मैं उसके यशस्वी भविष्य की कामना करता हूँ।

अन्त मे प्रियवर अशोक त्रिपाठी जो दो पीढियों से मुझसे जुड हैं जिनके कारण ही धूप के हस्ताक्षर आप तक पहुँच रहा है कवि उनके प्रति कृतज्ञ है। इधर नये पारिवारिक प्रवेश क कारण साहित्य साधना मे काफी व्यवधान पडा है फिर भी श्रीमती विजयलक्ष्मी मिश्र का योगदान विशेष सराहनीय है। आप से प्राप्त वस्तु आप को ही समर्पित है आशा है अशुद्धियो से भरे इस सग्रह को स्नेही स्वजन की भाँति अपना कर उसमे से अपनेपन को ग्रहण कर आनन्दित होगे तो कवि अपने को काव्य पथ का शिथिल राही ही मान कर किंचित तोष प्राप्त कर लेगा अन्यथा यथाथ तो यही है कवित विवक एक नहि मोरे

सियाराम मिश्र

मगला देवी **मन्दिर**

गोला गोकणना**थ खीरी**

मगलाशा

डॉ. सियाराम मिश्र के सद्य प्रणीत गीत सग्रह धूप करे हस्ताक्षर को देखने का सुख सौभाग्य मिला। मिश्र जी के अनेक प्रबन्ध काव्य और स्फुट सकलन प्रकाश में आ चुके हैं। मचो पर भी उनकी रचनाएँ सुरुचिपूर्वक सुनी जाती हैं। वे परम्परा बोध तथा समसामयिक जीवन यथार्थ के रस सिद्ध कवि हैं। यह सकलन उनकी नवीनतम उपलब्धियो का सवाहक है।

मिश्र जी का पिछ्ला गीत सकलन कोइ तीन दशक पूर्व प्रकाश मे आया था। इस अवधि मे हिन्दी गीत विधा मे वस्तु शिल्प गत कई परिवर्तन देखे गये। एक ओर तो नई कविता और गद्यात्मक चिन्तन ने उसे आहत किया मचो ने भी उसे खारिज किया और फिर फिल्मी गीतो ने इसे बहुत कुछ विकृत कर डाला किन्तु दूसरी ओर गीत नये नये बोधो और वादो से भर गया उसका पुनर्भव नव गीत रूप मे हुआ। इसके भीतर युग सम्वेदना के साथ साथ लोक सम्वेदना समा गयी जिससे यह गीत अपेक्षाकृत और अधिक मर्मस्पर्शी हो उठा। श्री मिश्र के यह गीत इस अन्त यात्रा के सबल साक्ष्य हैं। उन्होने इन गीतो मे एक ओर प्रकृति के रग भरे हैं अनेक छोटे छोटे दृश्य खण्ड और उनका जिया हुआ एक जाग्रत ससार इन गीतो मे जीवन्त हुआ है। दूसरी ओर उनके गीतो मे सामाजिक सराकार से सम्बन्धित अनेक यक्ष प्रश्न प्रतिध्वनित हुये हैं। कवि की सब से बडी चिन्ता है दिनो दिन अमानवीकरण वह अपने देश काल से चूँकि भावात्मक स्तर पर जुडा हुआ है। इसलिये इस सामाजिक विघटन को देखकर बहुत सतृप्त है। उसका यह शोक ही यहाँ श्लोकत्त्व मे परिणत हो गया है।

सकलन मे व्यग्य और आक्रोश पूर्ण रचनाओं के अपने तेवर कम नही है। कवि ने व्यवस्था पर करारी चोट की है। भ्रष्टाचार उन्मूलन उसका मूलोद्देश्य है। इस प्रकार की रचनाओ को पढते सुनते भारत का जन गण मन अवश्य द्रवित होगा ऐसी मेरी मगलाशा है। वर्तमान परिस्थितियो में जब राष्ट्र के सर्वस्व का लगभग क्षरण हो गया है उसके अस्तित्व को पुनर्गठित करने का एक मात्र हेतु दिख रहा है भाव सम्वेदन। हमें भारतीयो के अन्तर्मन को जगाना होगा रसात्मक बोध के द्वारा, अन्तर्विद्या के बलपर मुख्यत काव्य कला के सहारे।

श्री सियारम मिश्र सरीखे कवि चिन्तक यदि इसी प्रकार उदान्त अनुभूतियों को गीतो की कठकाकली द्वारा जगाते रहे तो कभी न कभी नव जागरण की चेतना इस

ऋषि भूमि म जवश्य उनरेगी। मेरे मतानुसार ऐसी रचनाओ का पारायण स्वय मे एक साहित्याध्यात्म ह। मैं इस रम्य रचना का स्वागत करता हूँ और सहृदय समाज से यह अपेक्षा करता हूँ कि इन गीतो को आकठ अपनाय और प्यार म इन्हे गले लगाय।

लखनऊ

नागपचमी १९९७

प्रोफेसर सूर्य प्रसाद दीक्षित

डी० लिट

हिन्दी विभागाध्यक्ष

लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

शुभैषणा

जनुजापम प० मियारम मिश्र का माहित्य साधना क्र मे अन्तरग ५दी हूँ। इन्हान निधर भ क्लम चलाइ उधर उधर इनकी कारयित्रि प्रतिभा न नय प्रतिमान बनाद। इनका निष्ठा लगन न जिम विधा का छुआ उम प्राणवन्त किया। गीत नवगीता का यह मक्लन इनकी बहुमुखी प्रतिभा प्रतिष्ठा के अनुरूप है। गायेन जस देखन की तथ्यपरक्ता इम सग्रह म भी मवत्र दृष्टिगाचर होती है। बिना किसी लाग लपेट के कहना ओर एम कहना कि किमी को बुरा न लगे उस भी जिस पर कटाक्ष है इनकी अभिव्यक्ति की निजी विशषता है।

धूप कर हस्ताक्षर निश्छल मन की महज अभिव्यक्ति हैं। तरलता तथा शरदनदी क्री तरह मुखद प्रवाह इनका वैशिष्टय है। इस सकलन का स्वागत हिन्दी जगत म प्रवचन हागा एमा मेरा विश्वाम ह। न पतियाये तो गीत मग्रह पढ कर दख मर कथन का जक्षरश जनुमोदन करग। इति शुभम्।

१२/८/१९९७ विष्णु कुमार त्रिपाठी राकेश

पूर्वपीठिका

प० सियाराम मिश्र हिन्दी कविना के लब्ध प्रतिष्ठ हस्ताक्षर हैं। महासामर बेर भीलनी के भारत के सपूत पचवटी से कर्बल' आदि सुप्रसिद्ध प्रबन्ध कृतिया के रचनाकार के रूप मे आप की सशक्त पहचान है। धूप करे हस्ताक्षर आप का ताजा सग्रह है। इसमे गीत नवगीत और नई कविताएँ है। १७० गीतो नवगीतो तथा तीस नई कविताओ का यह सग्रह स्वय मे कवि की प्रमिभा और सामर्थ्य का प्रमाण है। गीतो मे परम्परा और नवगीतो मे सामाजिक विसगतियो को जीते हुये मिश्र जी ने बडे ताजे टटके बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। इस कृति का कवि कंवल कल्पना लोक का ही प्राणी नही है उसन जीवन के सत्य से भी सीधा साक्षात्कार किया ह। उसका मानना है गीत तभी तक जीवित जग म जब तक मस्त जवानी है । आज जिन्दगी से मस्ती तिरोहित हो चुकी है। आम आदमी ऑख खुलते ही समस्याओ से रूबरू होता है। गीत के हाशिये पर आने के पीछे के कारणो मे एक प्रमुख कारण यह भी है। कदाचित् यही कारण है कि कवि का मन प्रेम परक गीतो की अपेक्षा व्यवस्थाजन्य विसगतियो को उजागर करने मे अधिक रमा है।

नवगीतो मे मिश्र जी ने अपनी व्यापक दृष्टि का प्रयोग करते हुये कथ्य का पर्याप्त विस्तार दिया है। मिश्र जी के नवगीत आम आदमी के दुख दर्द की अभिव्यक्ति देते हुए प्रकृति के सहज परिवेश और कृत्रिम जिन्दगी के किसी भी मोड से कुछ भी उठाकर उसमें ऐसा प्राण फूंक देते हैं कि विस्मय होता है। बिजली के पखे कूलर मे लटकी दोपहरी सुबक रही फसले किसी भाड के ईधन जैसा मन रह रह जलता रोज है कसैलापन बो रही सुबह मन्दिर मे पुलिस के प्रबन्ध सा आज हो गया है मेरा गॉव । जैसी पक्तियो मे स्पष्ट है कि कवि की शब्दावाली बासी पुरानी या रहतिया नही है उसमे एक ताजगी हे। प्राय प्रत्येक काव्य विधा कालान्तर मे स्टाक लेग्वेज के प्रयोग के कारण आकर्षण खोने लगती है। नवगीत भी अब इस नियति का शिकार हो रहा है। किन्तु मिश्र जी के नवगीत जिस तरह की फ्रेशनेस ले कर आये हैं उसे देखकर नवगीत को चुका हुआ कहने वालो के मुँह निश्चित रूप से बन्द होगे।

मिश्र जी की भॉति ही मेरा मन भी कार्यालय मे दबे प्रपत्रो जैसा ही है। मुझे भी साफ-साफ दिखाई ८ २८ा है कि गौरैया के दानो पर अबाबील घात लगाये है। गन्ध के हिस्से आये उपवास मुझे भी लगातार बेचैन कर रहे हैं। दुदहडी का खुद दूध पी जाना मुझे भी कुछ कर गुजरने के लिये झकझोरता है। कदाचित यही कारण है कि

धूप करे हस्ताक्षर - सियाराम मित्र

मिश्र जा क गीत नवगीत मुझे भीड में फँसे मेरे अपन कवि की आवाज प्रतीत हो रहे ह। मे धूप कर हस्ताक्षर का स्वागत करता हूँ। विश्वास है सम्पूर्ण हिन्दी जगत इस कृति का जात्मीयता के साथ सहेजेगा।

तुलमी जयन्ती

१० अगस्त १९९७

डॉ० प्रतीक मिश्र

हिन्दी विभाग

डी० ए० बी० कालेज कानपुर

सम्प्रेषणा

श्री मियाराम मिश्र क १८० गीतों नवगीतो तथा न्ीस नइ कविताओ के सग्रह का पाण्डुलिपि के रूप मे मने अवलाकन किया। ये गीत सग्रह सचमुच सुधा सागर एवम स्फनि निना मरस मामग्री है। अनेक गीत पढ़कर तो म भाव विभोर हा गया। श्री मिश्र ना न इन गाता क माध्यम से जीवन भर के अनुभवो को समेटते हुए उनका रत्न कणा की भाति सचय किया है या या कहूँ उन्होने सहस्रो मील की यात्रा असख्य फूला का सुगधि का बटोर कर इस गीत काव्य की रचना की है और अपने जीवन अनुभव एवम् विवक का मथन कर य गीत रूपी रत्न निकाले हैं जिनकी चमक दमक म पाठक मुग्ध हुए बिना नही रह मकते। वाम्तव म में ता इसका नाम धूप कर हस्ताक्षर' क बजाय गीत रत्नाकर अधिक उपयुक्त समझता हूँ।

य गीत साहित्य गगन मे चमकते हुए सितारा के समान है। इनकी आभा देश ओर काल की मकुचित सीमा पार करके सदैव एक समान और एक रस रहने वाली ह। करोडा कण्ठा से निकलने के कारण से माधुय एवम कोमलता के प्रतीक होगे। गीत यदि न हा तो साहित्य मे रम की कोई स्थिति ही न रहे। मानव जीवन का ऐसा कोई काना बचा हुआ नही ह जिस पर गीतो के कण अमृत के समान शीतलता एवम् प्ररणा प्रदान करन की शक्ति न रखते हो। गीत अमूल्य रत्न है इनकी आवश्यकता प्रत्यक सहृदय का सर्वदा पडा करती है। गीतो का प्रभाव सीधा हमारे हृदय पर पडता ह। कर्ण कुहरा म पडते ही ये विद्युत तरगो की भाति समूचे शरीर को अन्तरात्मा का विमुग्ध कर देते हैं। मानस की गहराई मे व्याप्त आनन्द लहरो को उद्वेलित बना देते हैं और कुछ क्षणा के लिए ऐसा ज्ञात होने लगता है कि हृदय को ब्रह्मानन्द का साक्षात्कार हो रहा है और अकस्मात् बहुत दिनो तक सजोकर रखने योग्य कोई बहुमूल्य मणि मिल गई है। ऐसी अद्‌भुत एव विचित्र शक्ति से भरे इन गीत रूपी अमूल्य रत्नो की माला से अपने कण्ठ को अलकृत करने की इच्छा सभी में निसदेह पायी जायेगी। श्री मिश्र जी ने इन गीतो में एक ओर गभीर घाव करने को सामर्थ्य है तो दूसरी ओर बज्र के समान क्रूर-कठोर एव मरुस्थल के समान नीरस हृदय को भी सरस, स्निग्ध एव रस प्लावित करने की अपार क्षमता है। इनमे ये पोषक तत्व है जो निर्बलों में भी अपार बल भर देगे और निराशा से थके हुए चरणो मे पवन गति डाल देंगे तथा दु ख एव वेदना के असह्य भारों को क्षण भर मे ही दूर कर देगे। कविवर मिश्र जी का ये गीत सग्रह कल्प तरू के समान साबित होगा। इन गीतो की सुविस्तृत सघन छाया में जीवन पथ की थकान को दूर करने की क्षमता ही नही बल्कि दुर्गम

यात्रा हसते हसते सुख पूर्वक समाप्त करने का अक्षय तथा दैवी सम्बल भी है।

सच पूछा जाय तो य गीत सग्रह कोहिनूर से भी अधिक मूल्यवान है तथा श्री मिश्र जी के क्मर तोड श्रम अतुल धेर्य एव नीर क्षीर विवेक चितन तथा चमकती हुयी ध्रप नही बल्कि धूप जैसे सफदे बालो का प्रतिफल है। इन गीतो मे गीतकार की प्रतिभा का मणि काचन योग परिलक्षित होता है। गीतो से स्पष्ट है कि श्री मिश्र जी का अध्ययन गहन चितन प्रौढ एव अभिव्यक्ति स्वच्छ है। इन गीतों मे गीतकार कवि ने जीवन के सामान्य अनुभव मालिक विचार प्रकृति पर प्राकृतिक चितन कर सशक्त गीतो के सुन्दर महल का निर्माण किया है। इनके गीतो के थोडे शब्दो मे विशाल भावो को व्यक्त करने की विशेष योग्यता है। यह बात सर्वमान्य है कि महान विचार सावभौम तथा शाश्वत होते हैं आर वे भोगोलिक अथवा जाति पॉति की सीमाओं से बाधे नही जा सकते। इस भावना से लिखा गया ये गीत काव्य अनुकरणीय तथा पुरस्कृत किये जाने योग्य है। मेरा विश्वास है इन गीतो का उज्जवल प्रकाश हमारे लिए हर दृष्टि से मार्गदर्शक तथा श्रेष्ठ साबित होगा तथा हिन्दी भाषी जनता इस सुन्दर गीत-सग्रह का उचित स्वागत करेगी। मै आप सब साहित्य एव गीत प्रेमी पाठकों की ओर से श्री मिश्र जी को बधाई देता हॅू तथा उनके सुखी एव दीर्घजीवन की कामना करता हूँ।

गोलागोकर्णनाथ
गणेश चतुर्थी ६/९/९७

पी० आर० सिह
महाप्रबधक
बजाज हिन्दुस्तान लिमिटेड
गोलागोकर्णनाथ खीरी उ० प्र०

x x x x x x x x x x

कविवर सियाराम मिश्र वेदना अनामा ऑगन की नागफनी महासगर, बेर भीलनी के पचवटी से कर्बला भारत के सपूत गायेन जस देखेन भारत की विभूतियॉ दहेज बत्तीसी आदि चर्चित कृतियों के रचयिता हैं। गोयन जस देखेन के बाद मिश्र जी का धूप करे हस्ताक्षर का प्रणयन तथा प्रकाशन उनकी काव्य यात्रा में दिशा परिवर्तन का सकेत तो देता ही है साथ ही साथ उनके काव्य शिल्प के अनेको अनजाने प्रयोगो की ओर भी ध्यान आकृष्ट कराता है।

अनुभूति को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दे पाना ही कवि के सृजन पथ का गन्तव्य है। सृजन पथ पर चलते चलते कवि अपने वातावरण (नैसर्गिक एव सामाजिक) को देख समझकर जो कुछ लिखता है उसमें उसकी सूक्ष्म दृष्टि के

अतिरिक्त वातावरण की स्थूलता जाने अनजाने अवश्य आ सकती है। सामाजिक सदभ मे जन समस्याओं पर लिखते समय जन सामान्य के धरातल पर काव्य गगा को लाना निश्चित रूप स भगीरथ प्रयास है। श्री मिश्र अपनी पूर्व कृतियो मे काव्य गगा म सरल अवगाहन क लिए इन घाटो के निर्माण मे सफल रहे है और उन्होने इस दृष्टि स अपन परिवेश के प्रति ऋणशोधन मे भी सफलता पायी है।

प्रबन्ध काव्य म कथ्य काव्य पर भारी पडने लगता है। स्वानुभूति कहानी के अबाध प्रवाह के आग दब जाती है। मिश्र जी ने सामाजिक समस्याओ के सदर्भ में प्रबन्ध काव्य का प्रणयन सफलतापूर्वक बरसो से किया है और अब लगभग तीस वर्षो की काव्य साधना के बाद स्वानुभूति गीता के माध्यम से अभिव्यक्ति पाने की मचल उठी लगती है जिसका सुखद एव आश्चर्यजनक परिणाम है धूप करे हस्ताक्षर ।

'धूप करे हस्ताक्षर ' मे सग्रहीत गीत समग्र रूप से यद्यपि श्री मिश्र की काव्य यात्रा के अगले पडाव की पहचान हैं किन्तु प्रत्येक गीत अपने आप मे अलग भाव भूमि का बोध कराता है। एक ओर शुद्ध दर्शन है जीवन की शुचिता है भोगा हुआ सत्य है तो दूसरी ओर बोध गम्य भाषा मे समाज की विद्रूपताओ का चित्रण। सग्रह के आत्परक गीतो के अतिरिक्त अन्य गीत जन सामान्य को लक्ष्य करके लिखे गये हैं। आधुनिक जीवन की विद्रूपताओ और विसगतियो के सम्बन्ध मे कटाक्ष करते हैं कुछ गीतों के परिवेश मे व्याप्त विसगतियो के सम्बन्ध मे क्षोभ है तो दूसरी ओर जन जागरण ही नही बल्कि क्रान्ति का आह्वान भी है और इस दृष्टि से यह नही कहा जा सकता की सग्रह के गीतों में एक वर्ग विशेष का लक्ष्य है। सभवत इस दृष्टि से कवि गीत काव्य मे भी समाज सुधारक को अपने से अलग नही कर पाया।

शिल्प के सदर्भ में भाषा छद लय तथा ज्ञेयता की दृष्टि से भी प्रत्येक गीत अपने आप मे एक स्वतत्र इकाई है। आशा है कि जिस प्रकार साहित्य जगत में श्री सियाराम मिश्र जी की अन्य काव्य कृतियो का स्वागत हुआ है उसी प्रकार उनकी यह प्रस्तुति भी काव्य मर्मज्ञो को पसन्द आयेगी। मिश्र जी को केवल यही उलाहना है कि

दिन भर गडी धूप आँखों में,
शाम हुयी तो तुम घर आये।।

रमेश चन्द्र दीक्षित
अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक

| अनुक्रमाक |

तुम पत्थर हो मौन समेटे

तुम पत्थर हो मौन समेटे
हम थक गये सुनाते गाते।।

पॉव दिये तुमने चलने को,
जाने क्यो तुमने ही काटे।
जान न पाया पीडा दे कर
लाभ दिया या केवल घाटे।

आदत या कि अदा है काई,
बुझा बुझा बाती उकसाते।।

जग कहता कर्मों का बन्धन,
हम कहते तुम भाग्य विधाता।
तम-प्रकाश यदि एक सदृश थे
क्यो मुझसे जोडा फिर नाता।

जाने क्यो सकोच तुम्हे है
मुझसे अपने दॉव छिपाते।।

आधी राह न चल पाया था,
तुमने जीवन की गति छीनी।
देख रहा ससार मुझे है,
दे दे कर भावान्जलि भीनी।

कहते हैं विधि तुम निषेध तुम,
मेरे ज्ञान-ध्यान तुतलाते।।

रहे देखते तुम ऑखो से
और तुम्हारा मन्दिर टूटा।
थाम न पाये उन हाथो को,
अखिल जिन्होने कचन लूटा।

करके तनिक चकित चित सबको,
सन्देहो का गेह जलाते।।

यदि सन्ध्या को ज्योति कहे तो,
मतलब क्या प्रभात का होगा।
अगर अश्रुओ की लिपि जय मे,
मतलब कौन मात का होगा।

चुप के नीड बैठ जाने क्यो,
तुम यह हाहाकार सजाते।।

☆☆

शाम हुई तो तुम घर आये

दिन भर गडी धूप ऑखो मे,
शाम हुई तो तुम घर आये।।

दीप्ति तुम्हारी थी फिर भी मैं
चकाचौंध मे जान न पाया।
जल था जहॉ, वहॉ थल देखा,
दुर्योधन की समझ न आया।

पन्थ तुम्हारा पॉव तुम्हारे,
स्वगति दर्प मे हम बौराये।।

जितना सूरज चढा गगन मे,
उतनी जपी काम की माला।
मिट्टी थकी आग जब कॉपी,
दिखा धुँधलके मे मृगछाला।

अब जब खेत कट गया सारा,
तब सीला पर दृष्टि लगाये।।

जो थे दीप जलाने वाले
निकले दीप बुझाने वाले।
पृष्ठ पृष्ठ जो नोच रहे थे,
ये थे जिल्द बधाने वाले।

चूस लिया सब आम उम्र का,
क्या गुठली की हाट सजाये।।



तुम आ जाना

जब विवेक का बोल बन्द हा,
जब मेरा सयम लँगडाये।
जब सावन को कोई मरुथल
अपनी टेढी ऑख दिखाये।

जाकर कभी प्रेम के पनघट
रीती गागर पडे उठाना
तुम आ जाना।।

हाने लगे निठुर यह उर जब
आशाओ को ग्रहण लग जब।
लगे सूखने मन की गगा
अरुणोदय मे सॉझ जगे जब।

दर्शन के प्यासे नयनो को
पडे विवश हो जब पथराना
तुम आ जाना।।

यह जग क्षणभगुर है माना।
किन्तु अमर अनुराग रह यह
माता से तुम रहो पिराय
यदि जीवन तम-ताग रहे यह

अपनी चादर देख जब कभी
पडे मुझे रह रह पछताना।
तुम आ जाना।।



याद तुम्हारी मोहन

जीवन के सब पृष्ठ फटे हैं
तार तार है मैली चादर
फिर भी याद तुम्हारी मोहन
मन को वृन्दावन कर

सूख गये पनघट हैं सारे
शेष अशेष स्रोत हैं खारे।
चितवन एक तुम्हारी लेकिन
हर मौसम सावन कर

टूटी चूडी सा उर मेरा
चारो ओर तमस का डेरा।
रूप चॉदनी किन्तु तुम्हारी
माटी को कचन कर

एक उपेक्षित तिनके जैसा।
हूँ श्रम कातर दिन के जैसा,
कैसी है प्रेरणा तुम्हारी।
अनगढ गीत भजन क

मुझसे अधम न कोई जग मे
मेरे साथ न कोई मग मे।
लिपि है कौन प्राणधन बोलो,
जो दुख को बामन व



सियाराम मिश्र

वह और नही केवल तुम हो

जा ऑसू की लिपि को स्वर दे
वह और नही केवल तुम हो।

जग विहॅसा है देखा जब जब
पतझड को मेरे जीवन मे।
कविता भी फूटी है लेकिन
पक्षी के पहले क्रन्दन मे।

जलता मौसम फागुन कर द
वह और नही केवल तुम हो।।

छाना धरती का हर कोना
कोई न मिला सुनने वाला।
मैं तूल हुआ तो खुश हो कर
ससार बना धुनने वाला।

अभिशाप हमारे वर कर दे
वह और नही केवल तुम हो।।

इस बडे मुसाफिरखाने मे
हर मनुज मुझे बेचैन मिला।
सब मिले मछेरे हैं मुझको
उर सबका मछली देख खिला।

जो मरुथल को उपवन कर दे,
वह और नही केवल तुम हो।।

शहनाई-मातम साथ रहे,
डोली से चिता सजाने तक।
पत्थर लड लड कर रेत बने,
अपने सागर में आने तक।

जो जलनिधि को जलधर कर दे,
वह और नही केवल तुम हो।।

है आग लगी कब से घर मे,
हम प्रतिपल जलते रहते हैं।।
प्राणो मे ज्वार खौलता है
फिर भी सरिता सा बहते हैं।

जो मेरी व्यथा अमर कर दे,
वह और नही केवल तुम हो।।

☆☆

सियाराम मिश्र

गगे जय जय

जन्हुसुता जय गगे जय जय।।

शक्ति-प्रसविनी, बुद्धि प्रदायिनि,
नीराकार ब्रह्म फलदायिनि।
शब्द-अर्थ के तुम सगम-सी,
शूल-विदारिणि प्रिय अनुपायिनि।
अगणित विमल तरगे जय जय।।

राष्ट्र-एकता की प्रतिभा-सी,
सस्कृति की बहती नव धारा।
शिव की प्रिया, परम पद दात्री,
समता का आधार तुम्हारा।
कल कल गीत अभगे जय जय।।

भागीरथी, पूत जल वाली
सगर-सुतो-हित मुक्ति प्रणाली।
सुरपुर-पथ अथ मुक्त विनत को।
राग विरत शिव शिर पाचाली।
भारत प्राण विहगे जय जय।।

ओढ उदासी जो तट आया,
तुलसी बना, कबीर कहाया।
प्राप्त उच्चता की हिमगिरि ने
तुमको जब अन्तर में पाया।
हे रसरूप उमगे जय जय।।

युगल कूल कर रम्य तुम्हारे,
ऋषि-मुनि जागृति-सुप्ति सवारे।
हिम की छुअन तप्त हृदयो को,
कुसुम-हास गति-मति सब द्वारे।
पुत्रवत्सला अम्बे जय जय।।

लक्ष्य-प्राप्ति सन्देश समुज्ज्वल,
भेद कलुष तम हित किरणोत्पल।
सदा अकृत्रिम दुग्ध धवल पय,
शान्ति सुकृति विश्वास अमल जल।
भवॅर वीचि शुभ रगे जय जय।।

शेष फणावलि उच्छल लहरें
लोभ क्रोध पल मात्र न ठहरे
शक्ति स्वरूपा ताप बिनाशिनि
प्रज्ञा बन जग की कच छहरे
प्राण-प्रभा शुभ अगे जय-जय।।



इससे अधिक और क्या देते

इससे अधिक और क्या देते
तुमने मुझे सरलता दे दी।

शुभ्र चॉदनी से उतरे हो,
तुम उर क जगल मे मेरे।
घेर रहे हैं जब इस मन को,
तम के सगी क्रूर लुटेरे।

क्षितिज दिखाई देता हर क्षण,
तुमने वह विह्वलता दे दी।।

शूलो मे फूलो का अनुभव
धुऑ घुटन सत्रास न बोता।
मिले परायापन कितना भी
किन्तु न मैं अपनापन खोता।

चिन्ता से जलते जीवन को
तुमने मधुर तरलता दे दी।।

चाहो तो सब कुछ दे सकते,
क्या अभाव है पास तुम्हारे।
पल भर को बाधित तरग से।
क्यों सागर गहराई हारे।

तूफानो मे तट दिखता है
तुमने वह निर्मलता दे दी।।



तुम आये हो द्वार परम प्रिय।

उडती जो चेतना खगी है,
प्राणो मे बन प्रीति जगी है।
मन मे तुम्ही तुम्ही लहरो मे,
उसमे भी जो आग लगी है।

जय हो अथवा मिले पराजय
दोनो के आधार मिले प्रिय।।

जिसने तुमको रच नकारा।
क्षण मे बनता तम का चारा।
सभव और असभव तुम हो
दभी गिरि उँगली से हारा।

ओस सदृश तुम सरल अनामय।
फूलो के ससार परम प्रिय।।

कण देकर पा लिया हिमालय,
एक शब्द से महाकाव्य को।
यदि भूले से सुधि हो आयी,
तृण ने पाया असभाव्य को।

चलता है रवि रथ इगित से,
दुख वन के पतझार परम प्रिय।।

रूप और माटी दोनो तुम।
शिखर और घाटी दोनों तुम।
विधि भी तुम्ही निषेध तुम्ही हो,
विघटन-परिपाटी दोनों तुम।

अनिल-अनल सब अनुशासन मे
तुम घट और कुम्हार परम प्रिय।।



जाऊँ किसके द्वार

तुमस बडा कौन इस जग मे
जाऊँ किसक द्वार।।

पादप डरा डाल से अपनी
सिन्धु वीचियो से डरता है।
चित्रकार अब निरख तूलिका,
जाने क्यो आहे भरता है।

ऑगन-ऑगन हैं दीवारे
बाहर बन्दनवार।।

प्यास मिली है पनघट-पनघट,
हुये क्षितिज के बादल नटखट।
इतने गीत कहाँ लिख पाया,
पीडाओ के जितने जमघट।

हुआ पोस्टर जीवन सारा
दिवस हुये अखबार।।

तुम विरोध के भीतर समरस।
मृत्यु चषक मे भरे सुधारस।
तुमको देख लग रहा ऐसे,
आदि-अन्त मिलते हो हँस हँस।

बिना तुम्हारे टूट रहा है,
उर-वीणा का तार।
जाऊँ किसके द्वार।।

वह दिन आयेगा कब जाने

खायेगे न लाभ के विषधर,
जब कि रूप को रौंद अकारण।
खुल कर जीवन सत्य कहेगे।
नर न रहेगे धन के चारण

बैठेगी कविता सिरहाने
राजभवन होगे पैताने
वह दिन आयेगा कब जाने।।

प्यार ढहायेगा जाने कब,
मन्दिर मस्जिद या गिरिजाघर।
पथ को कब मजिल मानेगा,
मानव भाग्य विधाता बन कर।

कब मखमल के बिस्तर होगे
श्रम की लौ के प्रिय परवाने
वह दिन आयेगा कब जाने।।

मिट्टी का सगी जाने कब
निज कर्मों का फल पायेगा।
अन्धकार नारी विक्रय का
कब प्रकाश का तल पायेगा।

प्रेम चलेगा जाने किस दिन
बजर भू पर स्वर्ग बसाने
वह दिन आयेगा कब जाने।।

कुर्सी के मन्तव्य न होगे
मात्र तिजोरी जाने किस दिन।
नित्य सहेगा शोषण पतझड
ऑसू फूल बनेगा पलछिन।

कब ले देखो साँस चैन की
रोटी के दुखिया दीवाने
वह दिन आयेगा कब जाने।।

**

तुमने मन के दीप जलाये

तेज तुम्ही हो तुम्ही कुहासा,
सन्ध्या मे किरणोज्ज्वल आशा।
उर की गुफा निवास तुम्हारा
भाषा हीन मनो की भाषा।

सूय वायु नभ तारक बन कर,
पलको से कॉटे दुलराये।।

पाकर प्रेम तुम्हारा प्रियवर
ज्ञानी बना भक्त कहलाया।
जिसने हो करुणार्द्र पुकारा
उसको नित्य निभाया गाया।

तृण वीरुध लहलहे चिरन्तन,
प्राणो में बन प्राण समाये।।

कचन को दे गन्ध परम गति
दिया निराश्रित को तट मधुमय।
व्यथा-ओस को तप्त दोपहर,
तुम्ही जिल्द तुम ग्रथ प्रभामय

तन्द्रिल अभिलाषा की भू पर
तुमने मोहक क्षितिज उगाये।।



जग मे निराला मेरा देश है

चन्दन जैसी जिसकी माटी।
स्वर्ग तुल्य कश्मीर है
करुणा से हर आँख यहाँ की।
भर कर नीर अधीर है।
जहाँ सत्य पर मर मिटन हित
ऋषियो का उपदेश है
जग मे निराला मरा देश है।।

गगा-यमुना जैसी नदियाँ
लिय सुधा की धार हैं।
हिमगिरि की चाटियाँ रही
जिसका प्रिय रूप सवार हैं।
राम कृष्ण का और बुद्ध का
गान्धी का सन्दश हे
जग मे निगला मरा देश है।।

लव कुश भरत सरीखे बालक
जिसके आँगन खल हैं
तीर्थ जहाँ पावन प्रयाग सा,
महाकुभ स मले हैं।
जिसक द्वार लजाता आता
पथ-भूला भी क्लश है।
जग मे निराला मेरा देश है।।

होली राखी ईद दिवाली
जिसक प्रिय त्याहार हैं
बिदिया और महावर मेहदी
जिसके शुभ श्रृगार हे।
धर्म कर्म का जिसक बाँध
सुन्दर शिव परिवेश है।
जग मे निराला मेरा देश है।।

कालिदास तुलसी कबीर के
मीरा क हैं भाव यहाँ।
न्योछावर हान का रहता,
देश भक्ति म चाव यहाँ
अलग अलग दिखता है लेकिन,
मिलकर सदा अशेष है
जग मे निराला मेरा देश है।।

उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम
भिन्न-भिन्न भाषाएँ हे।
पर्वत कही कही हैं मरुथल
वन की कही छटाएँ है।
भेद-क्लुष पावो का जिसक
धोता यह रत्नेश है।
जग मे निराला मेरा देश है।।

यह स्वतत्रता का दीप है

ऑधियो से हो घिरा भले
पीन अधकार मे तिरे।
पथ पर विवेक की रहे
क्यो न हो कहार सिरफिरे

हैं तरल परन्तु है अटल
मोतियो से युक्त सीप है।।

लाभ मोह के प्रहार हैं
छिन्न-भिन्न तार-तार हैं।
किन्तु सब स्वरो मे श्रेष्ठ है,
द्वेष है कलुष हजार हैं।

गर्जना में सिन्धु की फॅसा,
यह मनोज्ञ अन्तरीप है।।

तर्क तुम सहस्र कर चलो
मुक्त कल्पना मे नित फलो।
पाप-पुण्य की गणित करो,
आत्मग्लानि अग्नि मे जलो।

किन्तु यह प्रभात सा सुखद,
स्वर्ग के सदा समीप है।।
यह स्वतत्रता का दीप है।



जागते रहो

खग समूह को न बाज छल सके,
दीप को न रात अब निगल सके।
भावना न भीख माँगती रहे,
न्याय खूँटियो मे टाँगती रहे।
दासता की अब न वह मिसाल हो,
शत्रुता घृणा न बाँटते रहो।

जागते रहो।।

बढ सके न भ्रष्ट और आचरण,
सत्य को छिपा सके न आवरण।
छा न जाय नव्य नाश का धुआँ,
हो न जाय पन्थ-पन्थ अब कुआँ।
रह न जाय कोई फटे हाल अब
हो न जाय जिन्दगी मलाल अब।
झूठ का बवाल काटते रहो।

जागत रहा।।

शोषको के खेल मे न श्रम पिस,
घिस चुका न और आदमी घिसे।
अन्ध का न हो अमन्द अवतरण,
पॉव का न बेडियॉ करे वरण।
चल सके न कोई भी कुचाल अब,
जातिवाद का न हो उछाल अब,
अर्थ के चरण न चाटते रहो।
काहिलो के छद्म छॉटते रहो।

जागते रहो।।



चल वहाँ अब देश मेरे

स्वर्ग बिम्बित है जहाँ कश्मीर की डल झील प्यारी,
वेद का वह ज्ञान गौरव विश्व है जिसका पुजारी
सूर तुलसी व्यास कालीदास से जिस थल चितेरे।
चल वहाँ अब देश मेरे।।
यज्ञ करते हो जहाँ पर सगठित हो ऋषि हमारे
गूँजते हो गीत मनहर चेतना की गति, सवारे।
मानसर को हो जहाँ पर प्रेम से कल हस घेरे।।
चल वहाँ अब देश मेरे।।
राम जन कल्याण के हित हो जहाँ दु ख भार ढोते,
या भगत अशफाक हो जिस राह पर बलिदान होते।
डाल रखे वीरता ने हो जहाँ अविजेय डेरे।
चल वहाँ अब देश मेरे।।
तट जहाँ रामेश्वरम का सिन्धु अनुशासित जहाँ है
ले हिमालय शैलजा का रूप प्रतिभासित जहाँ है,
ला रहे सन्देश प्रिय का शुभ्र वासन्ती सबेरे।
चल वहाँ अब देश मेरे।।
सयमित ऋतुएँ जहाँ हो ज्योति को तम ठग न पाये
शान्ति हो सुख हो चतुर्दिक पीर पथ-भूली न आये,
भावना बस राष्ट्र की हो भाव हो मेरे न तेरे।।
चल वहाँ अब देश मेरे।।



मेरे ऋषियों के देश बढो

झापडी हट पर महलो का प्राचारा म
हा कान व्यथा का कथा कहा सुनन वाल।
कट जाय गत लकिन प्रभात मन बन्दा हा
यह ध्यान रह जा ह प्रभात बुनन वाल।
तुम प्रम भरा परिवश लिय
मर ऋषियो क दश बढा।।

हा लाभ आर लिप्सा लकिन मन्तुलन रह
काइ उपवन म मतफेक अब अगार।
है नही पलायन जान का लक्षण हाता
प्रिय नही किन्तु मझधार किनार क द्वारे।
शुभ वदा का उपदश लिय
मर ऋषिया क दश बढा।।

गतिशाल बना चिर यौवन का सकल्प वरा
मत किसी पथिक का तुम ऑसू की भाषा दो।
जीवन गगा का पावन बहती धारा हे
मत थक फेफडो स इसका परिभाषा दा।
दृढता का अटल नगेश लिय
मेरे ऋषियो क दश बढा



चल वहाँ अब देश मेरे

स्वर्ग बिम्बित है जहाँ कश्मीर की डल झील प्यारी,
वेद का वह ज्ञान गौरव विश्व है जिसका पुजारी
सूर तुलसी व्यास कालीदास से जिस थल चितेरे।
चल वहाँ अब देश मेरे।।
यज्ञ करते हो जहाँ पर सगठित हो ऋषि हमारे
गूँजते हो गीत मनहर चेतना की गति, सवारे।
मानसर को हो जहाँ पर प्रेम से कल हस घेरे।।
चल वहाँ अब देश मरे।।
राम जन कल्याण के हित हो जहाँ दु ख भार ढोते,
या भगत अशफाक हो जिस राह पर बलिदान होते।
डाल रखे वीरता ने हो जहाँ अविजेय डेरे।
चल वहाँ अब देश मेरे।।
तट जहाँ रामेश्वरम का सिन्धु अनुशासित जहाँ है,
ले हिमालय शैलजा का रूप प्रतिभासित जहाँ है,
ला रहे सन्देश प्रिय का शुभ्र वासन्ती सबेरे।
चल वहाँ अब देश मेरे।।
सयमित ऋतुएँ जहाँ हो ज्योति को तम ठग न पाये,
शान्ति हो सुख हो चतुर्दिक पीर पथ-भूली न आये
भावना बस राष्ट्र की हो भाव हो मेरे न तेरे।।
चल वहाँ अब देश मेरे।।



मेरे ऋषियों के देश बढो

झापडा हट पर महलो का प्राचाग म
हा कान व्यथा का कथा कहा सुनन वाल।
कट जाय गत लकिन प्रभात मन बन्दा हा
यह ध्यान रह जा ह प्रभात बुनन वाल।

तुम प्रम भरा परिवश लिय
मर ऋषिया क दश बढा।।

हा लाभ आर लिप्सा लकिन मन्तुलन रह
काइ उपवन म मतफेक अब अगाग।
ह नहा पलायन जाने का लक्षण हाता
प्रिय नहा किन्तु मझधार किनाग क द्वाग।

शुभ वदा का उपदश लिय
मग ऋषियो क दश बढा।।

गतिशाल बना चिर यौवन का सकल्प वरा
मत किसा पथिक का तुम ऑसू की भाषा दो।
जावन गगा की पावन बहती धारा हे
मत थक फफडो स इसका परिभाषा दा।

दृढता का अटल नगेश लिये
मरे ऋषियो के दश बढा



अगारो पर चलना तुमको

जैस भी हो युग क राही
अगारो पर चलना तुमको।।

गॉव गली से महानगर तक
माना शूल लगाये मेले।
कुशल पथिक वह वीर वही है,
तम को ज्योतित कर जो खेले।

हो पायी किसी मनचाही
गिर गिर नित्य सम्हलना तुमको।।

यह निश्चय है चीर खिचेगा
होगी यहॉ द्रौपदी नगी।
किन्तु न जीवन एक भिखारी
यदि अनन्त का शाश्वत सगी।

साहस से गाण्डीव उठाओ।
आखिर मे तो गलना तुमको।।

दीमक चाट तुम्हे क्या लगी
ग्रथ नही हा एक पुराने।
तुमको शर शय्या पर लेटे
सकल्पो क महल उठान।

जलना भी है यदि तो पल पल
दीपक सा है जलना तुमको।।



हम अजर अमर म्रियमाण नही

हैं प्यास भीष्म पितामह अब
शर शय्या पर लेटे-लेटे
किस तरह तृषा को शान्त करे
असमजस मे आकुल बेटे

युग कहता उनक कानो मे
क्या हे अर्जुन सा बाण नहा।।

पत्तियॉ बहुत हैं शाखे भी
केवल बलहीन हुयी जड है।
पुरवा है लकिन ओले हैं
खाई पहचान रही गड है।

सकत मिल रहा है त्रुटि का
भटके योवन का त्राण नही।।

दीपक अपना है माटी का
तल मे भी लकिन स्नह नहा।
लौ है बाती हैं दृढता है
फिर भी घटता सन्दह नही।

जान कब ठहरगा विचार
हम अजर अमर म्रियमाण नही।।

है फुलवाडी है माली भा
फिर भी हैं फूल नही अपन।
धारा है सुन्दर लहरे हैं
फिर भी हैं कूल नही अपन।

नौका की गति को ये कपटी
बढन दते पाषाण नहा।।



सियाराम मिश्र

हर बन्धन स्वीकार नही है

विकसित हा कर मुदित फल है
चाह जगल हा या बस्ती।
कितना भी कम समय मिल पर
कम न हुयी ह उसका मस्ता।

मधुपा क अतिरिक्त कुसुम का
मधु गुजन स्वीकार नही हे।।

गगा की धारा सा जावन
सुख पाता पल-पल बहन म।
कितना पीर सहा है उसन
पर्वत क उर म रहन म।

पावा का बटी पहना द
वह कचन स्वीकार न ा ह।।

मासम क सॉच म काई
कवि न आज तक न रह पाया हे।
अन्तिम पथ यही हे जग म
कोन मनुज यह कह पाया ह।

कवल राजा जिसे लगाये
वह चन्दन स्वीकार नही हे।।

दुख न उन्हे व नही पुजारी
मस्त पवन से जा रहत हैं।
शिशु का मात्र खिलौना जग है
सुख की भॉति पीर सहते हैं।

उनका पाषाणी प्रतिमा का,
आलिगन स्वीकार नही है।।



गीत का नव स्वर बनो

हम बॉसुरी बन कर रहे
तुम हमारे गीत का नव स्वर बनो।।

शूल का सहकर बना उद्यान है
ात्थरो मे निर्झरो का गान है।
शब्द सार्थक हैं अगर है भावभय
प्रम से मिलता अभय अनुदान है।

हम तुम्हारे हिन सजल वारिद बने।
तुम हमारे हित धरा उवर बना।।

वे मरण का पर्व सा हैं मानत
ऑसुआ की लिपि जिन्हे कुछ ज्ञात है।
सृष्टि की सुलझी पहली है यही
घार तम मे मुँह छिपाय प्रात ह।

हम शरद सुरसरि सदृश यदि पथ बने,
तुम सचतक माल का पत्थर बना।।

आयु की दीमक लगी पुस्तक मिली
दीप की लौ एक कम्पन स भगी।
किन्तु जब उस पार का तट साथ हे
चीर कर लहरे चली अपनी तरी।

हम तुम्हार हित बने आकाश यदि
तुम चमकता रूप का निशिकर बना।।



समय की कडी धूप मे हूँ खडा

पॉखुरी पर पडे ओस के बूँद सा
मैं समय की कडी धूप मे हूँ खडा।। —

है कमल नाल के तन्तु सी भावना,
बुद्धि का यह चिटकता हुआ ताल है।
था जहॉ हूँ वही पर खडा आज भी,
तोष के हाथ मे तर्क का जाल है।

एक आशा लिये धन्य हूँ विश्व मे,
ठूँठ होता हुआ वृक्ष होकर बडा।।

ज्यो घुसा एक मजदूर हो खान मे,
एक सत्रास ओढे घुटन जी रहा।
या कि विज्ञान जैसे जगत नष्ट कर
ग्लानि का कल्पना मे गरल पी रहा।

फूल की दृष्टि ले किन्तु इतिहास के
पाहनी रूप के सामने हूँ अडा।

साथ होकर अगत तुम न हो साथ मे,
पुष्ट वरदान भी एक अभिशाप है।
दूरियो मे सदा यह लगा है मुझे,
सूर्य तपता तुम्हारा लिये ताप है।

प्यास से हैं बडी तृप्ति की उलझने,
इस लिये शूल बनकर स्वय को गडा।।

अर्थ है दैन्य का हम न बलवान हैं
सत्य के प्रति नही है समर्पित हुये।
बात करते सदा भूधरो की मगर,
स्वत्व से हम कभी हैं न गर्वित हुये।

सेव से हैं सलोने सुधर रूप मे
किन्तु भीतर हमारा हृदय है सडा।।



साथ मे इस तरह तुम चले प्राण धन।

साथ मे इस तरह
तुम चले प्राण धन।
मौत भी जिन्दगी बन गयी द्वार पर।।

मस्त मधुऋतु लिए
देह पतझर हुई
शुष्क घाटी बही
एक निर्झर हुइ

गोट कुछ इस तरह
है बसी काल न
जीत लज्जित हुई प्रीति मे हार पर।।

ज्ञात था यह रहेगी
कहानी नही
बिजलियो सी बिछलती
जवानी नही।

भाग्य की स्लेट पर
कुछ लिखा इस तरह
छिड गया है मिलनगीत हर तार पर।।

एक दीमक लगी
पुस्तिका थी मिली।
आज वह अक्षरो के
सुमन से खिली।

नाव आशा लिये
कुछ बही इस तरह
तट विमोहित हुय कान्त मझधार पर।।



दिन है ढलने लगा

दिन है ढलने लगा
नीड को पछी जाने वाला है।।

पतझड तो आता है लकिन
किसलय का सन्दश लिय।
बासी समाचार सा जीवन
बिधि निषघ परिवेश लिय।

हिरण प्यास का थका
एक गति अभिनव पाने वाला है।।

किसी गॉव के उजड मल
जैसा मन सुनसान हुआ।
कटी हुई लुटती पतग सा
शष उम्र का मान हुआ।

लाख माक्ष से बढकर
यह बन्धन अपनाने वाला है।।

बिदिया मेंहदी और महावर
साथ धुएँ के दौर चल।
ओला पानी ऑधी क सग
मृदु रसाल के बोर पले।

कौन विसगति भरी नाव यह
तट पर लाने वाला है।।

अधरासव मे छिपे मरुस्थल
हर बगिया मे है कॉटे।
किन्तु खडा है वही न जिसका
कोई ऑधी मन बॉटे।

सुन्दर वह जो सन्ध्या के घर
दीप जलाने वाला है।।

❀❀

जग मे ऐसा रूप न कोई

जग मे ऐसा रूप न कोइ
जिसको तुच्छ समझ ठुकराना।

पका अधपका स्वाद न जान
प्रमा का मन गन्ध बना।
ज्योति पवन क हित क्या काई
है दृढतम अनुबन्ध बना।

रवि न सुस्मिति बन पर्दों स
सीखा धरा-अधर तक आना।।

माती भी बालू का कण था
अकुर मे वट की छाया।
हर प्रसिद्ध गायक न पहल
लगडी बाणी मे गाया।

खारी जल बादल बिजला मिल
पहन इन्द्र धनुष का बाना।।

काली स्लट सफद लिखावट
पक आर पकज दुख सुख।
विश्व प्रम की उवर भू पर
विष धारण करत शिव-मुख।

धीरज क गिरि न सीखा है
ऑधी का पायल पहनाना।।

जिजीविषा अकुरण काल मे
यदा-कदा मण्डित होती।
परम्परा भी बटन दबा कर
कहॉ कभी खण्डित हाती।

एकाएक बुना किसन हे
जीवन का ताना-बाना।।

पीडा से बोझिल मन मेरा

पीडा स बोझिल मन मेरा,
अपनो पर अधिकार नही है।।

बार बार सोचा करता हूँ,
मैं सब मे निजत्व लय कर दूँ।
एक बूँद मे सागर भर कर,
पल मे हर दूरी तय कर दूँ।

कहॉ फली याजना किसी की
सपनो पर अधिकार नही है।।

लेकर दुखद कसैलेपन को
गन्ध गुलाबो की उड जाती।
खिलने से पहले ही कलिका,
है अरुप को गले लगाती।

कितना भी अभिसिचन कर ले
तपनो पर अधिकार नही है।।

कैसी भी हो दिव्य ऊँचाई,
उसको कोई तम क्या जाने।
कितनी भूख प्यास कितनी है,
ओलो का मौसम क्या जाने।

कितनी सुधा गरल कितना है,
नपनो पर अधिकार नही है।।



मेरी अभिलाषा है

मेरी अभिलाषा है
मेरे भीतर सागर हो।।

लहरे आये जाये लेकिन,
तट सा मौन रहूँ।
जीवन के कानो मे,
सब कुछ कहकर कुछ न कहूँ।

निशिकर बिछले
खुल कर खेले
रूप उजागर हो।।

मछुआरी सभ्यता
जगत की परिभाषा धारे।
जाल फॅसी मछली सी तडपन
सहूँ प्रकृति द्वारे।

भरी-भरी होकर भी
तन की
रीती गागर हो।

नदियॉ मिले हजार
किन्तु मैं सब को लयकर लूँ
तूफानी आदत रहते
जग बाहो मे भर लूँ।

रहे साथ घडियाल
किन्तु मन
जलद गुणागर हो।।

ग्राहक प्रेमी कावे कोई हो
सुख से स्नात करूँ।
जो न सुने सगीत हमारा
तनिक न बात करूँ।

रहूँ वहाँ मैं।
जहाँ न कोई
कीर न कागर हो।।



सियाराम मिश्र

न कोई कथा नही है

बहना मेरा काम
सतत जीवन की धारा हूँ

जैसी है सब ठीक सोच कर
नीद लगी दुलराने थी।
बेचैनी दागों ने भर दी,
चादर जो सिरहाने थी।

उर के नभ मे सघर्षों का,
मैं ध्रुव तारा हूँ।

खाल उधेडे रिसते घावो
चलने का अभ्यास भला।
जितना यहाँ हुआ जो व्याकुल,
वह उतना ही गया छला।

नवल छद नव ताल निमिषा
कभी न कारा हूँ।।

नाव और पतवार हीन था
ज्वारो मे तिरता आया।
तोष हो गया पल मे मरुथल
फिर सुधियो ने उलझाया।

सागर से होकर अनुबन्धित,
मैं बजारा हूँ।

निर्भयता लेखनी बनी जब,
सच का महाकाव्य लिखने।
महामौत मे लगा उसी क्षण।
मानव को जीवन दिखने।

चलते रहो यही मैं जग को,
देती नारा हूँ।।

भाग्य बडा या कर्म बडा है

कब स उर म द्वन्द्व खडा ह
भाग्य बडा या कम बडा हे

माथ की रखाएँ पट कर
तम का गहरा रूप हुआ हे।
हाथा का अवलम्ब लिया जब
असफलता न मात्र छुआ ह।

आना था पतझड ता आया
मन का पॉव साच उखडा हे।।

सिर धुनता ह सूखा ऑगन
दख किसा की प्रिय किलकारी।
कास रहा ह क्रूर नियति का
काइ निरख अजस्र फुलवारी।

कबस अतिथि कसला दुख ह
घन स घिरा अरुण मुखडा हे।।

जग नश्वर हे तन माटी हे
अब तक गल न यह उतरा है।
यद्यपि क्षण-क्षण क चूहो न
अब तक आयु वस्त्र कुतरा है।

सॉसो के सरगम का रुकना
यह विचार बन शूल गडा हे।।



बहना मेरा काम

बहना मेरा काम
सतत जीवन की धारा हूँ।

लौट-पौट कर फेन-फेन,
कर देती हूँ मन को।
तट से बँधी खोजती प्रतिपल,
जीवन के धन को।

उर के नभ मे सघर्षों का
मैं ध्रुव तारा हूँ।

जाने क्या पूरे दिन
पादप मुझसे कहते हैं।
चलने मे हैं विवश
व्यथा रूकने की सहते हैं।

नवल छद नव ताल निमिष प्रति
कभी न कारा हूँ।।

चुपके से सगीत हमारा
जो आकर सुनता।
खोता है इस तरह कि
जैसे हो बचपन बुनता।

सागर से होकर अनुबन्धित
मैं बजारा हूँ।

दो रोटी के हेतु,
नही हनुमान बनी हूँ मैं।
प्यासे अधरो के हित
शीतल तृप्ति घनी हूँ मैं।

चलते रहो यही मैं जग को
देती नारा हूँ।।

★★

तुम जान सकोगे अन्तर से

जाओ । यदि जाते हो लेकिन
तुम जा न सकोग अन्तर से।।

जग माँग रहा मधुऋतु तुमस
मुझको प्रिय है पतझार सदा।
रुचिकर है हास मधुर सब को
मुझको दृग जल की धार सदा।

तुम पवि उर के हो प्राण विरल
पाया न तुम्हे छू मन्तर से।।

दुनिया की भीडो ने अब तक,
कवल घूँघट पट दखे हैं।
पा सके सुधा अधिकाश नही
आकुल अतृप्त घट देखे हैं।

हूँ सूर बना आँख फोडा
अवलोक रहा अभ्यन्तर से।

कोरा कागज हूँ लेकिन तुम
जाने क्या पल-पल लिखत हो।
बाजार लगी है मेला है
फिर भी घूँघट मे दिखते हो।

निकले पडते हो रूप धरे
प्राचीरो स वन प्रान्तर से।।

**



पलभर भी न यहाँ अपना है

युग-युग की चर्चाएँ लेकिन
पल भर भी न यहाँ अपना है।।

क्षमता किसमे सहे न पतझड
परिवर्तन के लधु प्रहार से।
जीवन दौडधूप ह केवल
नाप तौल है जीत हार से।

ख ा हिमालय सकल्पो का
क भर भी न यहाँ अपना है।।

राज्य भोग की आशाओ को
रोका किस वल्गा ने क्षण मे।
एक उम्र हूँ माना फिर भी
सडता हूँ ठहराव वरण म।

मस्ती कल्पवृक्ष की लेकिन,
तृण भर भी न यहाँ अपना है।।

पलक मारते बूढा बरगद
सहित जटा के ढेर हो गया।
हवा चली मीठे फल वाला
सारा बाग कनेर हो गया।

कौन कहे उन मधुमासो का
मर्मर भी न यहाँ अपना है।

वृक्ष मात्र उगता है लेकिन,
चिन्तन नही कभी करता है।
सख्या गिनता नही वक्त की,
घट-घट कूप नित्य भरता है।

समय नही बाडा पशुओ का,
नही मात्र तन सा तपना है।।

 सियाराम मिश्र

सुधि कर लेना इन गीतो की

सुधि कर लना इन गीतो की
वरना गीत बिखर जायेगे।

इनके प्राण सरस हैं जिनसे,
वे शब्दो के तार तुम्हारे।
हैं तन से यदि भाव हमारे
ता सागर से ज्वार तुम्हारे।

भर न सकोगे यदि छुअनो से
गडते शूल सिहर जायेगे।

वक्ष हमारा किन्तु तुम्हारी
बन कर के धडकन जीते थे।
खिलते थे खुलते थे सग-सग
मधु कटु साथ-साथ पीते थे।

बिना तुम्हारे सकेतो के
भटके पॉव किधर जायेगे।।

पावन मत्र बनेगे मेरे
इनको अगर कभी गा दोगे।
इनमे डूब बहोगे यदि तो
हर खाकीपन झुठला दोगे।

दखेगे मृदु रूप तुम्हारा
स्वर क दूत जिधर जायेगे।।



पलभर भी न यहॉ अपना है

युग-युग की चर्चाऍ लेकिन
पल भर भी न यहॉ अपना है।।

क्षमता किसमे सहे न पतझड
परिवर्तन के लधु प्रहार से।
जीवन दौडधूप ह केवल
नाप तौल ह जीत हार से।

ख ा हिमालय सकल्पो का,
क भर भी न यहॉ अपना है।।

राज्य भोग की आशाओ को
रोका किस वल्गा ने क्षण मे।
एक उम्र हूँ माना फिर भी
सडता हूँ ठहराव वरण म।

मस्ती कल्पवृक्ष की लेकिन,
तृण भर भी न यहॉ अपना है।।

पलक मारते बूढा बरगद
सहित जटा के ढेर हो गया।
हवा चली मीठे फल वाला
सारा बाग कनेर हो गया।

कौन कहे उन मधुमासो का
मर्मर भी न यहॉ अपना है।

वृक्ष मात्र उगता है लेकिन,
चिन्तन नही कभी करता है।
सख्या गिनता नही वक्त की,
घट-घट कूप नित्य भरता है।

समय नही बाडा पशुओ का,
नही मात्र तन सा तपना है।।



सुधि कर लेना इन गीतो की

सुधि कर लेना इन गीतो की
वरना गीत बिखर जायेगे।

इनके प्राण सरस हैं जिनसे,
वे शब्दो के तार तुम्हारे।
हैं तन से यदि भाव हमारे
ता सागर से ज्वार तुम्हारे।

भर न सकोगे यदि छुअनो से
गडत शूल सिहर जायेगे।

वक्ष हमारा किन्तु तुम्हारी
बन कर के धडकन जीत थे।
खिलत थे खुलते थ सग-सग
मधु कटु साथ-साथ पीते थे।

बिना तुम्हारे सकेतो के
भटक पॉव किधर जायेगे।।

पावन मत्र बनेगे मरे
इनको अगर कभी गा दोग।
इनमे डूब बहोगे यदि ता,
हर खाकीपन झुठला दोगे।

दखेगे मृदु रूप तुम्हारा
स्वर क दूत जिधर जायेगे।।



बार-बार समझाता हूँ मै इस मन को

बार-बार समझाता हूँ मैं इस मन को
ढीला करता हूँ जकडन को
बन्धन को,
फिर भी कोई अविश्वास क्यो छलता है।
पतझड आयेगा निश्चित अभिनन्दन को
बॉधेगा विष से भुजग हर चन्दन को
किन्तु अनिश्चय का विकास क्यो पलता है।।
अपरिहार्य है
ओला पानी उपवन को
चचलता असफलता,
वैभव को धन को
लका दहन किन्तु रावण को खलता है।।
पतन मिलेगा-
अटल सत्य दुर्योधन को
गलना होगा
एक दिवस हर कचन को
बुझने के हित किन्तु दीप क्यो जलता है।।
सुलझी मिलती नही
डोर है उलझन को
सदा सोखता व्योम
आग के क्रन्दन को
उग कर तप कर नित्य सूर्य क्यो ढलता है।।



हर आयु दीप की बाती सी

प्रिय सम्बन्धो की धूप सदा,
अविरल छॉवो मे पलती है।।

जो भी है प्रेम पथिक उसके
नयनो मे खारा पानी है।
नायिका एक है पीर जहॉ
ऐसी यह अमर कहानी है।

हर आयु दीप की बाती सी,
तिल-तिल कर पल-पल जलती है।।

जब सपनो का चन्द्रमा उगा
तो ग्रहण साथ मे लगता है।
हाटो के लगने के पहले
उठने का मौसम जगता है।

हर खुशी स्वयवर के जय की
वन मे कॉटो पर चलती है।।

जीवन से जीवन भर लड कर।
जब भी अपना साकेत मिला।
है विरह मिला तत्काल वही
सुधि बन दुख को अभिप्रेत मिला।

गगा सी अति पावन सीता,
उर पर रख बज्र निकलती है।।

कोई तम से भयभीत यहॉ
कोई प्रकाश से हारा है।
युग भवन जलजलो की भू पर
हर बार खडा बेचारा है।

जब तपती कोख हिमालय की
सुरसरि बन सुधा उगलती है।।



मेरे यौवन मुझे बता दे

~~मेरे~~ यौवन मुझे बता दे
क्यो इतना अभिमान तुझे है।।

अभी-अभी वचपन ने आकर
तेरी साँकल खटकाई थी।
काले काँटो सी लिपि कोई
अक्षर एक न लिख पाई थी।

अब तक जो कोरी पाटी थी,
उसका बहुत गुमान तुझे है।।

रूप नही होता है कोई,
जिसमे छिपा अरूप न होता।
ज्योति कलश पाता जग कैसे,
अगर कही तम-कूप न होता।

जो बन नूतन नित्य साथ है,
उसका अनुसधान तुझे है।।

झूठे आश्वासन सी अतिशय
आशा की कुसुमित फुलवाडी।
यह रम्य प्रकृति द्रौपदी तुल्य,
विज्ञान दुशासन की साडी।

नश्वर और अनश्वर क्या है?
कुछ इसकी पहचान तुझे है।।

जितनी बन्धन को दृढता दी,
निकले उतने कच्चे धागे।
जब दीप मिला पथ को कोई,
तो गणित चली आगे-आगे,

जो दुख का खौलता सिन्धु है
वह लगता कल गान तुझे है।।

❀❀

 सियाराम मिश्र

गन्ध भरे अब फूल मिलेंगे

अब तक कटी शूल के वन मे
गन्ध भरे अब फूल मिलेगे।।

होती नही अगर पतझड को
हरी-भरी मधुऋतु की आशा।
तो धरती कब की बन जाती
जलते मरुथल की परिभाषा।

थकन बटोरे हर नौका को
नये-नये मस्तूल मिलेगे।।

नभ होता टूटी चूडी सा
बादल हीन सूर्य रह जाता।
होता अगर न वशी का स्वर
रण उन्माद तूर्य रह जाता।

अगर हर लहर चीर बढेगे
मन-नौका को फूल मिलेगे।।

कविता मे जीवन है जग है
पनघट भी है मरघट भी हैं।
बाराते सयोग अगर हैं
तो पीडा के जमघट भी हैं।

मात्र मृत्यु है अगर सोच यह
पथ मे नित्य बबूल मिलेगे।।



वह भी जीवन क्या जीवन है

वह भी जीवन क्या जीवन है
जिसमे कोई आग नही है।।

हैं अभिव्यक्ति ज्वार से आकुल
कलिका पवि पर्वत इस जग मे।
शब्द स्वरो मे दीप घरो मे,
रक्त प्राणियो के रग-रग मे।

किन्तु न ज्वार यहॉ है कोई,
जिसके ऊपर झाग नही है।

कोई नही यहॉ धरती है,
जिसमे कुछ भूचाल नही है।
हर मानव धनवान यहॉ है,
कौन यहॉ कगाल नही है?

चन्दन का वन कौन जहॉ पर
रहता कोई नाग नही है।।

आशका असफलताओ को
कौन न आढे मिली सफलता।
कौन मिलन ऐसा है जिसमे,
हो न विरह की मृदु विह्वलता।

यौवन का मन कौन यहॉ है,
जिसने खेला फाग नही है।

परिवर्तन अदृष्ट का कागज,
जो हर दृश्य सोख लेता है।
अविदित क्रूर धार मे जिसकी,
जग सदर्प नौका खेता है।

ऐसी चादर कहॉ कही है?
जिसमे कोई दाग नही है।

एक ओर निज वक्ष उघारे,
मधु महन्त ले प्रकृति रूकी है।
तडपन व्यथा कराह सहेजे,
एक कील पर अवनि झुकी है।

चुभते शूलो से न घिरा हो,
ऐसा दिखा गुलाब नही है।।

★★

एक हाथ से दीप बुझा कर

एक हाथ से दीप बुझा कर
तुम आओ । तो गीत लिखूँगा।

ठडी हवा मारती चाकू
उर मे एक नदी उमडी है।
आन्दोलित है तन मन सारा
मस्त घटा जैस घुमडी है।

बॉह उठा ऐडी उचका कर
ॲगडाओ तो गीत लिखूँगा।

बीते कितने सॉझ सबेर,
सॉस सॉस से आज मिलगी।
प्यार पर्व मे जीवन कलिका
धर अधरो पर अधर खिलेगी।

झुकती पलके और उठा कर
मुसकाओ तो गीत लिखूँगा।

गन्ध भरे मोगरे मनोहर
कह दो अलको बीच सजा दूँ।
सभी स्वरो को छेड एक सग
तन चम्पा का राग बजा दूँ।

तुम मादक सी गन्ध लुटाकर,
उकसाओ तो गीत लिखूँगा।

मेरा घर ऑगन बन जाये
महक रही फूलो की घाटी।
वर्तमान हो अथ-इति डूबे।
बने अतीत-भविष्यत् माटी।

पिछली हर उलझन सुलझाकर
खुल जाओ तो गीत लिखूँगा।

एक कूल की इस सरिता मे
उतरे तैरे और बहे फिर।
चिरजीवी कर के मधुक्षण को
सुने तुम्हारी और कहे फिर।

जग के सब बन्धन झुठला कर
अपनाओ तो गीत लिखूँगा।।

सियाराम मिश्र

तुमसे सुन्दर प्रेम तुम्हारा

जल जायेंगे मन्दिर सारे
लपटो मे इस महाकाल की।
राख बनेगी सब गतिविधियॉ
अखिल रूप के इन्द्रजाल की।

टिक कर अधर कपोल नयन पर,
दृष्टि पथिक बनता बजारा।

प्रेम समझ सकता है केवल,
पीर सनी ऑसू की भाषा।
तुच्छ नही कुछ भी उस घर मे,
पली प्रणय की यदि परिभाषा

मौत-मेड से बॅधी न अब तक
नित्य निरतर इसकी धारा।।

एक शान्त सिहरन है उर की,
यह सुलझन से रूठी उलझन।
कपट गुफा के पास न जाती,
लाख मोक्ष से बढ कर बन्धन।

डूब गया जो इस सागर मे,
मिला उसे है रम्य किनारा।।

तुमसे सुन्दर प्रेम तुम्हारा।



 सियाराम मिश्र

जीवन भर प्रतिशोध जिया है

शब्द रहे समता के गहने
रहा राह भर उलझन पहने।
गॉठ रही मन की चिरजीवी
सॉस रही अभ्यस्त तपन की।

धूप छॉह मे रहा बसेरा।
मधु के बदले गरल पिया है।

उर उपवन मे फूल खिले पर
कुछ पल हॅसे और मुरझाये।
परिवर्तन ने सुखद भोर दी,
पीर खगी ने नीड बनाये।

दुविधा के निश्चित झूले पर
दीपक ने तम तोम पिया है।

विधवा की चूडी सा कोई,
सन्नाटा रह रह बोता था।
एक ललक थी किरन सजोये
गोधूली के स्वर ढोता था।

शैशव सी पहचान सजा कर
कवि को जग ने कफन दिया है।।



सियाराम मिश्र

वैभव की धुन मे जग सारा

किसी सरोवर की पीडा को,
काई गोता खोर न जाने।

वैभव की धुन मे जग सारा,
भटक रहा बन कर बजारा।
कितनी हलचल और उदासी,
कितना धूमिल उर का तारा।

कितनी नीद भरी नयनो मे,
यह पनघट की भोर न जाने।

चाहा था इतिहास बनाऊँ
अगारो की लिखूँ कहानी।
किन्तु सदा तट से टकराया,
कटी पीर के द्वार जवानी।

पादप का बोझिल मन कितना,
यह चिडियो का शोर न जाने।

सूरज ने कितना तडपाया,
मैंने चिटक-चिटक बतलाया।
मछुआरे, माटी के गाहक,
जो आया कुछ लेने आया।

कितनी तपन सही है मैंने,
वह पावस घनघोर न जाने।।



विरह प्यार की अमर कसौटी

बिना बुलाये तुम तक आऊँ,
यह कैसे प्रियतम हो पाये।।

माना तुम कण-कण में बिम्बित
मेरे मन तक डोर तुम्हारी।
कोई मधुप नही आता है,
फूली यदि न मिले फुलवारी।

विरह प्यार की अमर कसौटी,
सुधि ने शाश्वत दीप जलाये।।

इस जग को उत्सवी मिलन प्रिय,
तुमने तम-चादर फैलायी।
रोका कभी मान ने हमको
कभी दर्प ने ली अँगडायी।

कैसे पगली भीड भगाऊँ
मीठा मौन गीत बन जाये।।

उलझी लिपि गोरखधन्धो की
इस नगरी की कथा पुरानी।
विश्व अस्थियो का ग्राहक है
हर दधीचि की एक निशानी।

जीवन की इस जलकुभी से,
कौन निकल कर बाहर आये।।



तट के कानो से सुनना क्या

हैं रेत विभा से भर चमकी
कुछ शब्द महकते गन्ध भरे।
मझधार अगर है मिल न सकी,
कविता उर मे कैसे उतरे।

यह बैठ किनारे पर देखा,
केवल फूलो को चुनना क्या।।

अकुरण सुनिश्चित है लेकिन,
यह देह झरे ज्यो हरसिगार।
क्या कर लेगे पत्थर जग के,
यदि है प्राणो मे महा ज्वार।

जब सिर ओखल मे डाल दिया,
तब क्षण क्षण उलझन बुनना
क्या।

जीवन प्रतिबिम्बित है जिसमे,
जो कल कल ध्वनि मे बहती है।
प्रति पल नव कूल बदलती है,
नूतन बन सरिता रहती है।

पथ के अगणित अवरोधो मे,
पीडित हो माथा धुनना क्या।।

✲✲

पथ के हो न निशान भले ही

पथ के हो न निशान भले ही
होता है गन्तव्य वहाँ भी।।

जीवन का कुछ सदा अर्थ है
कृति सार्थक है सृष्टि किसी की।
सुख का सिन्धु सजोये रहती
अविरल ऑसू-दृष्टि किसी की।

सपना तो सपना है लेकिन
होता है मन्तव्य वहाँ भी।

मत उसका अस्तित्व नकारो
जो अदृष्ट तुम देख न पाये।
कब हॅसने रोने के सगी
बलि के पथी बन कर आये।

मरघट बुनता है सन्नाटा,
होता है भवितव्य वहाँ भी।

है विचित्र यह गणित काल की
पत्थर को देवता बनाती
मरुथल से प्यासे शरीर मे
सर की उर्मिल लहर जगाती

अन्तर मे खालीपन गडता,
हैं मधुक्षण दृष्टव्य वहाँ भी।।



कविता की बात करूँ

यदि ठहर सको उर के ऑगन मे-
पल दो पल
तो अन्तर से निकली
कविता की बात करूँ ।।
है शोर बहुत इन कानो को विश्राम नही
कुर्सी मे मानव मूल्य घॅसे अकुलाते हैं।
दुविधाये बॉट रहे मचो से कर्णधार,
बूचड खाने पर बन्दनवार सजाते हैं।
यदि दॉत दूध के मुक्त कर सको-
तुम विष से।
तो अन्धकार के कॉटो को
जलजात करूँ।
बहरो के आगे चिल्लाने का मतलब क्या
अन्धो के आगे अर्थ नही कुछ रोने का।
उल्टा लटका रहना है, हर चमगादड को,
कुछ अर्थ नही अबर के सूरज ढोने का।
यदि निहित स्वार्थ से मुक्ति हेतु
सकल्प वरो।
तो पुस्तक मे पनपी-
दीमक पर घात करूँ।
जल चुके नयन है जहॉ अनय की ज्वाला मे
सन्दर्भ व्यर्थ हैं उनके आगे सपनो के।
हैं भस्म हुयी तिनको सी टूटी निष्ठाये
उजडी पूजा से लक्ष्य भ्रष्ट मन अपनो के।
यदि छोड सको तुम दभ
भूख क्रय करने का।
तो चुप रहने का मैं भी
कम अनुपात करूँ।

उड सम्हल सम्हल विहंग रे

मानता हूँ पख मे भरी थकान है
टूटती हुयी छतो का ये मकान है।
छोड कर न जा मिलेगा नीड ये कहाँ
फूल की डगर नही दिये की शान है।

प्यार से बँधा है
तू न बन निहग रे।।

ओठ का सुहाग बन न शब्द जो जिया,
मान कर सुधा न जो गरल कभी पिया।
स्वप्न की छुअन न गुदगुदा सकी जिसे,
प्राण से पुकार कर न नाम है लिया।

हार मे विजय है
जिन्दगी है जग रे।।

चुक सके कभी न तू चला वो राह है,
अन्त का न सोच, अन्त की न चाह है।
विश्व रातरानियो का रतजगा नही
रोशनी तो अन्धकार की गवाह है।

हर कदम नया
नवीन सीख ढग रे।।



शूल से पाटलो को मिला मान है।

चाहे आकाश हो चाहे हो ये घरा
पीर की बस सुलगती कहानी यहॉ ।

जन्म का अर्थ होता यहॉ है ग्रहण
मृत्यु का भय लिये खौलता सिन्धु है।
पॉव की है नियति डगमगाना यहॉ,
कॉपता ज्योति मे ओस का बिन्दु है।

चाहे विश्वास हो या अविश्वास हो,
है जलन की सजी राजधानी यहॉ।।

स्वप्न का मूल्य होता क्षणिक तोष है
पाहनी है किनारा लिये हर नदी।
हर सुमन कटको से यहॉ त्रस्त है,
और बोझिल गुजरती हुयी हर सदी।

चाहे आभास हो तर्क हो या खरा,
भ्रम किये विश्व को पानी-पानी यहॉ।

जाग कर जी सके जो वही धन्य है,
पथ गन्तव्य है पन्थ वरदान है।
ऑसुओ से बना ये जगत रम्य है,
शूल से पाटलो को मिला मान है।

चाहे मधुमास हो या कि पतझार हो,
सयमित कब रही है जवानी यहॉ ।।



सियाराम मिश्र

ऐसा जीवन जिये

ऐसा जीवन जिये
महात्सव मेरा मरण बने।

जीवन नही वीथिका तम की
क्यो हम दूर भगे।
ऐसा लगे कि पुष्पित घाटी-
मे हम सुप्ति जगे।

काल नाग के फण पर नाचे।
मधु आचरण बने।।

अधर सुधा बन नाम तुम्हारा
शब्द-शब्द बाल।
प्रेम-सिन्धु मे नाव हमारी
ले कल हिचकोले।

दूर रहे अथ-इति की चिन्ता
वह सवरण बन।

चरागाह की नरम दूब सा
खालीपन आये।
सकट का बादल
माता की ममता बन छाय।

जा विनाश की वल्गा थामे
नव सस्करण बन।।

एसा जीवन जिये
महोत्सव मेरा मरण बने।।



बन सको किसी के लिये अगर

बन सको किसी के लिये अगर
तुम एक सहारा बन जाओ।

माना इस जग के माथे पर,
है परिवर्तन ने पीर लिखी।
हैं फूल खिले लेकिन उनकी
तम-कॉटो ने तकदीर लिखी।

जो अश्रुधार मे बहे नाव
तुम रम्य किनारा बन जाओ।।

सपने बनते टूटा करते
फिर भी ऑखो के हैं गहने।
तथता तो मात्र पलायन है
सुख-दुख सबको पडते सहने।

जो अरस रेत की पीर पिये
वह मृदु सरि धारा बन जाओ।।

बॉधे असीम को बन्धन मे
यह देह दिव्य है गोकुल है।
है अग्नि नदी जिसके नीचे,
यह प्रकृति दत्त सुन्दर पुल है।

जिसमे मोहन को ज म मिले,
वह पावन कारा बन जाओ।।



सियाराम मिश्र

यह विश्व व्यथित अपनेपन से

लिपियॉ ऑसू की अलग-अलग,
पीडा का रास एक ही है।

कोई अकुलाता है नभ मे
दुख कही नीड के बन्धन से।
बस एक गणित पाई अब तक,
यह विश्व व्यथित अपनेपन से।

घर का हो चाहे आश्रम का
लेकिन सन्यास एक ही है।।

कुछ खडे प्रतीक्षा मे व्याकुल
कुछ इति मे गति को जीते हैं।
है सुधा कलश को रक्षा भय
कुछ मीरा बन विष पीते हैं।

रग रूप आकृति भिन्न यहॉ
लेकिन इतिहास एक ही है।।

अभिव्यक्ति व्यथा को लिये सुमन
ले ओस-अश्रु हॅस गाता है।
हर निर्झर जीवन भर चलकर
बस खारापन ही पाता है।

हो भले विषमता आहो मे
लेकिन सत्रास एक ही है।।

सब हैं अतृप्ति सहते जग मे
चाहे सागर हो या सर हो।
सबके अधरो पर अगारे
चाहे राजा या जलधर हो।

रवि दिन मे निशि मे शशि जलता,
लेकन आकाश एक ही है।



बन सको किसी के लिये अगर

बन सको किसी के लिये अगर
तुम एक सहारा बन जाओ।

माना इस जग के माथे पर,
है परिवर्तन ने पीर लिखी।
हैं फूल खिले लेकिन उनकी,
तम-कॉटो ने तकदीर लिखी।

जो अश्रुधार मे बहे नाव
तुम रम्य किनारा बन जाओ।।

सपने बनते टूटा करते
फिर भी ऑखो के हैं गहने।
तथता तो मात्र पलायन है,
सुख-दुख सबको पडते सहने।

जो अरस रेत की पीर पिये
वह मृदु सरि धारा बन जाओ।।

बॉधे असीम को बन्धन मे
यह देह दिव्य है, गोकुल है।
है अग्नि नदी जिसके नीचे,
यह प्रकृति दत्त सुन्दर पुल है।

जिसमे मोहन को जन्म मिले,
वह पावन कारा बन जाओ।।



सियाराम मिश्र

यह विश्व व्यथित अपनेपन से

लिपियॉ ऑसू की अलग-अलग,
पीडा का रास एक ही है।

कोई अकुलाता है नभ मे,
दुख कही नीड के बन्धन से।
बस एक गणित पाई अब तक
यह विश्व व्यथित अपनेपन से।

घर का हो चाहे आश्रम का,
लेकिन सन्यास एक ही है।।

कुछ खडे प्रतीक्षा मे व्याकुल,
कुछ इति मे गति को जीते हैं।
है सुधा कलश को रक्षा भय
कुछ मीरा बन विष पीते हैं।

रग रूप आकृति भिन्न यहॉ
लेकिन इतिहास एक ही है।।

अभिव्यक्ति व्यथा को लिये सुमन
ले ओस-अश्रु हॅस गाता है।
हर निर्झर जीवन भर चलकर
बस खारापन ही पाता है।

हो भले विषमता आहो मे
लेकिन सत्रास एक ही है।।

सब हैं अतृप्ति सहते जग मे
चाहे सागर हो या सर हो।
सबके अधरो पर अगारे
चाहे राजा या जलधर हो।

रवि दिन मे निशि मे शशि जलता,
लेकन आकाश एक ही है।



सियाराम मिश्र

पतझर विषधर डाल डाल पर

आत्मा का द्रव गीत हुये पवि
मानव उर की गॉठ टटोली
किसी नीड म बन्द व्यथा को
खोले मौन चेतना बोली।

लुटी पालकी वधू छिन गयी
ताला बन्दी मान-माल पर।।

सुमन बहुत खिलने से पहले
आह भर रहे नुच जाने मे।
लिये राजधानी ऑसू की,
नारी भटक रहो थाने मे

हर थिरकन ठहरी-ठहरी है
रोडे अटके चाल-चाल पर।

रात और सन्नाटा ओढे,
दूर तलक पथ दृष्टि न आये।
धीरज की फटती छाती है
खग कोई बन मुक्त न गाये।

एक हादसा आज लिखा है
मनुज-मनुज के भाल-भाल पर।

क्रूर तराजू के पलडो मे
हर इन्सान तुला करता है।
ईर्ष्या द्वेष लोभ से बोझिल,
हर बाजार खुला करता है।

मेला तो मिलनोत्सव होता
लेकिन झगडा बाल-बाल पर।।



सियाराम मिश्र

चल दी है यह रात

चल दी है यह रात
और यह बात कहाँ चल दी।

दिन की दौड धूप जो बोझिल,
मन का नीड बने।
निशि यह गीत बने सरगम हो,
ऐसी मीड बने।

फैल रही जब उम्र स्वर्ग सी
मात कहाँ चल दी।

मैं निहार लूँ सुधि के मादक,
फूलो का खिलना।
युग-युग के भटके अतृप्त,
दो कूलो का मिलना।

मधुपल मे लेकिन मरुथल की,
घात कहाँ चल दी।

काढ रहा इतिहास काल से
ले उधार बूटे।
ऐसा प्राणद और कलामय,
जीवन क्यो छूटे।

उठते किसी रिवाज सदृश।
सौगात कहाँ चल दी।

यह देखो उग रही भावना,
पत्थर मे धडकन।
आग हुयी मुट्‌ठी मे बन्दी,
गन्ध बनी तडपन।

इस हँसती छत मे,
चमगादड जात कहाँ चल दी।।

☆☆

सियाराम मिश्र

है अजब विसगति जीवन की

है अजब विसगति जीवन की
जो चाहा वह पाया न कभी।

आरती सजा कर गया जहाँ
वह मन्दिर मुझका बन्द मिला।
मैं पृथिवीराज अभागा हूँ,
हर बन्धु मुझे जयचन्द मिला।

जिसको पत्थर तक सुन लेते
वह गीत मधुर गाया न कभी।

कैसा है साथ शिलाओ का
पूछा जो झरने बहते हैं।
वे बोले जग की मृदुता के
पीछे बस विषधर रहते हैं।

मन के मतग को स्नेह भरा
प्रस्ताव समझ आया न कभी।

अथ से इति तक रहते आँसू।
क्यो है सीता की आँखो मे।
जाने क्यो सुख बन्दी रहता
आजीवन व्यथा सलाखो मे।

जा सुधा बूँद बन कर बरसे।
वह घन नभ मे छाया न कभी।।

हैं नष्ट हुयी जिसकी फसले,
ऐसा मे कृषक अभागा हूँ।
मोती जिससे भयभीत रहे
वह तम का कच्चा धागा हूँ।

सच के सूरज को चुप्पी का-
घोसला अधिक भाया न कभी।।



सियाराम मिश्र

यह नाटकशाला का अभिनय

इतिहास सजाता रगों को,
है नित्य समय की साडी मे
पी कर सुनसान विगत कोई
कुछ खिले सुमन फुलवाडी मे।
कोई अनुबन्ध सजाता है
कोई जीता है मुक्त प्रणय।

यह बिना निमत्रण पत्र दिये
जुडता जगती का मेला है।
हैं खडा भीड मे हर मानव,
फिर भी वह निपट अकेला है।
जो क्षण-क्षण घटता व्यय होता
नर उसको मान रहा सचय ।।

कुछ अजब काल की स्याही है
जिसको न कलम मिल पाई है।
है ठगी गयी बौनो द्वारा
ऐसी यह दिव्य ऊँचाई है।।
है शक्तिमान भयभीत यहाँ,
निर्धन अशक्त रहता निर्भय।

मोती प्रदान करता सागर
छाती पर हाहाकार लिये।
बाँटते मेघ सबको खुशियाँ।
भीतर पावक का ज्वार लिये।
प्यासे को जीवन घट न मिला,
घट के जीवन का क्रय-विक्रय।

बचपन मे बोला जग मुझसे
तू चुप रह, मुझको जान जरा।
जब यौवन आया तो बोला
ठहरावो को पहचान जरा।
अब बूढा हूँ कमजोर हुआ,
कर लिया मौन का है निश्चय।।

सियाराम मिश्र

मेरे मन की पीर पुरानी

बदला है युग बदला जीवन
बदले कितने रूप तुम्हारे।
कितनी बार मिले बिछुडे हैं
धरती-नभ के भिन्न किनारे।

पीर प्रथम जमी जीवन म
यह जीवन की एक निशानी।
मेरे मन की पीर पुरानी।।

कौन यहाँ आया कुछ लेने,
यह जीवन है खेल तमाशा।
यह जग पानी की लहरो पर,
उठता सा है एक बताशा।

इतना है इतिहास हमारा
इतने मे है पूर्ण कहानी
मेर मन की पीर पुरानी।

प्रगति चली चरणो मे बॉधे
बन्धन की कठोर तम बेडी।
जब-जब अकुर फूटे तरू के
मरु न की तब ऑखे टेढी।

रुकने से बढना सुन्दर है,
इस आशा ने हार न मानी।
मेरे मन की पीर पुराना।।



सियाराम मिश्र

करता हूँ सघर्ष रात दिन

करता हूँ सघर्ष रात दिन,
मन से जाता हार।

तट होते असहाय
सिन्धु मे जब आता तूफान।
जो लहरो से खेला करते
गति खोते जलयान,

कर देती निरुपाय छतो को,
यह पावस की धार।

ऑगन मे आतक बसाये,
और द्वार पर शान्ति।
कालचक्र की घुटन उमस मे,
उग पडती है क्रान्ति।

बहुत देर तक राख न सहता,
दहक रहा अगार।।

जीवन एक सुधाघट लेकिन
बूँद-बूँद है प्यास।
उमड-घुमड कर कब ढक पाया
कोई घन आकाश।

फिर भी सपने नित्य सजाता,
पलको म ससार।।



सियाराम मिश्र

मैने सदा प्रकाश रचा है

अधकार के घर मे रह कर,
मैंने सदा प्रकाश रचा है।

नागफनी बो कर उर नभ मे,
कोने मे मोगरा सजाये।
जग है सहज गुणो मे लिपटा,
ज्योति यहॉ भटकाव बसाये।

अधी गलियो का वासी हूँ
नित्य नया विश्वास रचा है।।

मिले समय की पाटी यदि तो,
बालक बन कर अक्षर लिख दूँ।
जितने प्रश्न उगे हैं अब तक,
एक शब्द मे उत्तर लिख दूँ।

अनगढ और भदेश सम्हाले
हरा-भरा मधुमास रचा है।

जिल्द बनूँ मैं उस पुस्तक की
पृष्ठ-पृष्ठ मे प्यार जहॉ हैं
अमर वियोगी की तडपन म
खुला मिलन का द्वार जहॉ है।

ऑसू की लिपि द्वारा मैंने,
सुस्मिति का इतिहास रचा है।



मेरी नदी तीव्र मत बहना

कूलो पर पाहन जो तेरे,
यह तेरे सयम के घेरे।
द्वारपाल से झुकते पादप
देगे सहकर घात, उलहना
मेरी नदी तीव्र मत बहना।।

सिन्धु शीघ्र यदि तुझे बुलाये,
तो कहना रख धीरज आये।
निज लहरो मे मुदित उछल कर
पीडाहीन वेग हर सहना
मेरी नदी तीव्र मत बहना।।

तू दीक्षा-तप का शरीर है
तेरे हित यह जग अधीर है।
पूत मत्र रट प्रणव याम मे
सुभग रहे धरती का गहना
मेरी नदी तीव्र मत बहना।।

हृदय ताल मे मुक्ति गीत तुम
पीर पर्व की मधुर मीत तुम
शीतल मन चॉदनी देह से
आजीवन पुलको मे रहना,
मेरी नदी तीव्र मत बहना।।

श्रुति मराल की तुम गवाह हो
प्रेम राग नव रस उछाह हो
फूट पडी कविता हो शाश्वत,
कोई याचक दे न उरहना,
मेरी नदी तीव्र मत बहना।।

क्रोध-काम के हेतु क्षमा बन
प्रिय तट दो तुम मुझे रमा बन।
क्षुब्ध काल खण्डो को ढोकर
मेरी व्यथा कही मत कहना,
मेरी नदी तीव्र मत बहना।।



खुल कर खेले हम तुम आओ।

जहाँ न बरसाती कीचड हो
अपने हित फिसलन जीने को।
जहाँ मिले निर्मल गगाजल
मिलती रहे तृप्ति पीने को।

बीते क्षण को ज्योति गुफा के-
पार ढकेले हम तुम आओ।।

मन्दिर के पावन खम्भो से
सुख-दुख दोनो ऑखे मीचे।
युगल करो से सुधा सिन्धु को
अजुरी भर कर विश्व उलीचे।

कर्म व्योम मे नियति नटी की,
झिडकी झेले हम तुम आओ।

हर दिन हर पल कथा बॉचती
रहे तुम्हारी ममता ऐसे।
हो अनादि सगीत लहरियाँ
कूलहीन हो क्षमता जैसे।

जीवन जीने के हित अनुदिन,
पापड बेले हम तुम आओ।

पाटी श्वेत लेख हो उजले,
शब्द शब्द मे भाव रुपहले।
लगूँ अटपटा अनगढ जग को
जो चाहे जितना भी कह ले।

यादो की चिडिया को नभ के
द्वार सकेले हम तुम आओ।।



देखो सॉझ कटे अब कैसे

सुबह कटी सपनो के ऑगन
और दुपहरी धूप-छॉह मे
कॉप रही दीपक की लौ है
देखो सॉझ कटे अब कैसे।।

समझ निरर्थक फेका मैंने
चॉदी के सिक्को को पहले।
शरद नदी की मन्द धार मे
जहरीले थे सॉप रुपहले।
जिया अपरिचय सहज अजाने
आया दौडधूप के द्वारे।
पायल पहन खडी गोधूली
देखो तिमिर हटे अब कैसे।।

शब्द-शब्द मे उतर रहा है
सूख-सूख ऑखो का पानी।
इस पडाव पर जग आता है
रुक-रुक जाती थकी कहानी।
गिरना उठना सब कुछ भूला
नही शक्ति ने फिसलन मानी।
ज्वालामुखी थमा है लेकिन
देखो तपन घटे अब कैसे।

सॉचे वाँचे पास न फटके
नभ बस इन्द्रधनुष तक आया
अब है एक पठार गणित का,
गुणा भाग क्या खोया पाया।
केवल बहा वायु सा यह मन
मधुर कल्पना थोडा कचन
पहुॅच किनारे पर मन शकित
खारा सिन्धु पटे अब कैसे।।

**

दीवाली का यह प्रदेय है

धूम धडाके दगे पटाखे
दीवाली का यह प्रदेय है।।

भागा ऑगन का सन्नाटा
सजा दीप तुलसी की छाया।
शिशुओ के उर मे फुलझडियॉ
घर घर उजियाला गहराया।

शूलो पर चलते पॉवो की
हर भाषा का यही गेय है।

दिया चॉद ने था खान को
अभी चौथ को नभ मे उग कर।
ऑज रही काजल नयना मे
मॉ चाचा के आज उचक कर।

फूलो की घाटी सा मन है
यह पर्वों का सहज ध्येय है।

सफल प्रेम के उपन्यास का
एक पृष्ठ खुल गया अचानक।
सीधी हुयी वक्र रेखाये।
प्याप्त पक धुल गया अचानक।

पूजा की थाली सा जीवन
इस पूजा को मिला श्रेय है।



जीवन बहता एक बहाने

बुनता जाता ताने बाने
जीवन बहता एक बहाने।

नियति न होती मधुप मिलेगे,
क्यो खिलते यह फूल निदारे।
कैसे सार्थक सरिता होती
सुन्दर होते जो न किनारे।

तकिया सा दुख रख सिरहाने,
विश्व चला है प्यास बुझाने।।

उम्र न हो बस उजडी राते
इस हित नीद-स्वप्न मन भावन।
जो मरुथल की प्यास सजोये।
व्योम वही बनता है सावन।

अति मे मिलते पागलखाने,
किन्तु जगत अति मे पहचाने।।

सूखे पत्ते सा हर मानव
पादप-प्रभु से अलग हुआ है।
भू पर हो अवतरित इसलिये।
नर का उसने दर्प छुआ है।

चल देता तप के भवनो मे
स्याही पिये प्रात सुख पाने।।



यद्यपि रूप नही माटी है

पतझड मे पत्ती-पत्ती का झड जाना स्वाभाविक है।
जन्म मृत्यु जैसे रवि अनुदिन,
तम मे ही सोये जागे
और उम्र ज्यो कोई बालक,
ले पतग पथ पर भागे।
बनना मोम, मोमबत्ती का,
हड जाना स्वाभाविक है।।

सागर कभी भाप बन कर के,
नभ को घेर लिया करता ।
महासिन्धु कितने नभ लेकिन,
बन कर काल पिया करता ।
ठहरे हुये किसी भी जल का,
सड जाना स्वाभाविक है।।

आता जाता नही यहाँ कुछ
यह तो मैंने जान लिया।
लेकिन जब तक देह और मन
समय छलेगा मान लिया।
बीते यौवन की सुधियो का,
गड जाना स्वाभाविक है।।

यद्यपि रूप नही माटी है,
जीवन है विश्राम नही।
वस्त्र हीन झुग्गी की रमणी,
गठरी बनी ललाम नही।
गति मे लेकिन बन्दमार्ग का,
पड जाना स्वाभाविक है।।



सूने आंगन मे रहने का
अब मुझको अभ्यास हो चला।।

देखा भाग रहे शहरो को,
देखा है अन्धे बहरो को।
इन ऑखो से देखा मैंने,
कागज पर खुदती नहरो को।

सूखी सरिता मे बहने का
अब मुझको अभ्यास हो चला।।

यह चिथडो मे लिपटा भारत
दिन मे कितनी बार मिला है।
अधर कपोल मिले कितने हैं,
जहॉ न भूल गुलाब खिला है।

कुछ न कहूँगा यह कहने का
अब मुझको अभ्यास हो चला।

गगा के अन्तर से कोई,
कील गडा कर हॉक रहा था।
प्रतिमा के पीछे से केवल,
दर्प और धन झॉक रहा था।

जग की बॉह नही गहने का
अब मुझको अभ्यास हो चला।।

पोर-पोर टूटन पायी है,
जलते पाये सॉझ सबेरे।
कही प्यार का पर्व न पाया,
रात दिवस ज्यो सॉंप सपेरे।

खुश होकर पीडा सहने का,
अब मुझको अभ्यास हो चला।।

★★

सियाराम मिश्र

सरिता का कटता सा तट हूँ

मँझधार नही मालुम क्या है,
होते हैं कूल अधीर जहाँ।
उस गति का है अनुमान कहाँ,
दिखती न कभी जजीर जहाँ।

रजनी मे नया प्रभात लिये,
मैं खाली खाली पनघट हूँ।

पाते खग हैं अवलम्ब जहाँ,
ओढे आकाश खडा है जो।
जो पतझड से आतकित है,
खोहो को पाल बडा है जो।

मैं उस तरुवर के पात लिये,
दृढ पीरव्रती अक्षय वट हूँ।

हूँ महानगर के फैशन सा,
गन्दी गलियो का भार लिये।
कुछ और नही है शेष जहाँ।
क्रय विक्रय का ससार लिये।

जिनको पहचान मिली लँगडी,
मैं उन गीतो का जमघट हूँ।।



संगम बन जाये

मेरी वीणा गीत तुम्हारे,
स्वर दे दो सरगम बन जाये।

जियो महाभारत अन्तर मे,
वशी का अनुबन्ध न भूलो।
जो लय मे अग जग को बाँधे
वह जीवन का छद न भूलो।

मेरा अम्बर मेघ तुम्हारे
वर दे दो रिम-झिम बन जाये।।

बिना तुम्हारे जग लगता है,
मेरे प्रियतम नागफनी सा।
उजड गयी पूजा सा मन है
उर है खाली आचमनी सा।

श्रम मेरा है नीड तुम्हारा,
पर दे दो अनुक्रम बन जाये।।

सकल्पो ने रूप दिया है,
कर्म तुम्हारा सृष्टि तुम्हारी।
आग सहित समिधा है सूरज,
नव करुणा की वृष्टि तुम्हारी।

भाव हमारे अर्थ तुम्हारे,
कर दे दो सगम बन जाये।।



सियाराम मिश्र

सोया है हैरान चितेरा

ी दूर चले आये हैं
। है सुनसान अँधेरा।

पहले जिससे आश्रय माँगा,
बना बरगदी छाँव पुरानी।
अपना समझ नीड मे चहका
कर न सका, मौसम मनमानी।

बढा कर धन दुलराये,
लगता अनजान बसेरा।

चित्रकार ने चित्र बनाये,
पोर-पोर चादर रग डाली।
मन की भाषा बोल रही थी,
पचम स्वर मे कोयल काली।

राये सपने आँखो मे,
ता है वरदान सबेरा।

गिरते पत्ते सा मन लगता,
दुर्घटना सी रात हुयी है।
उपन्यास है एक फटा सा,
बूँद-बूँद कर नीद चुई है।

न कील सा ठोक हृदय मे,
या है हैरान चितेरा।

★★

सियाराम मिश्र

मेरी हर पहचान अधूरी

जब तक इगित हो न तुम्हारा,
मेरी हर पहचान अधूरी।

अखबारी कागज हूँ केवल,
छाप रहा मन्तव्य पराये।
कही खबर शिक्षालय की है,
पागलखाने कही बनाये।

नाप न पाया किन्तु आज तक,
शब्द हमारे मन की दूरी ।

मेरे चित्र टँगे हैं घर-घर,
है विचित्र इतिहास हमारा,
अन्धकार का वृक्ष मनाता,
महाज्योति का शुभ पखवारा।

दूर रहे सच से हैं सपने,
बस नयनो की यह मजबूरी

भीड बहुत ऑगन में मेरे
किन्तु नही अपनापन पाया।
बरस न पाया अब तक बादल,
मेघराग जीवन भर गाया।

मरने से पहले जीने की,
भूख बिके वह नही जरुरी।



सियाराम मिश्र

जनवरी मास आ गया

कूँ कूँ करता पिल्ला कॉपे
दुबकी खडी बिलार
जनवरी मास आ गया।

कूद-कूद कर दाना बीने
यह उदास कठफोडा।
मौसम की परवाह न करता,
कोई भूखा घोडा।
रोहू मछली सहमी सम्मुख
बगुला बना गवार
जनवरी मास आ गया।

कमरो मे दे रहे छमाही,
छात्र परीक्षा ऐसे।
मन्सूरी मे बरफ ढके,
बिखरे पत्थर हो जैसे।
सावधान वाहन के चालक
कोहरा घना अपार
जनवरी मास आ गया।

चाकू जैसा हवा मारती,
ताल जमे स लगते।
सरकारी अलाव के आगे,
निर्धन दुखिया जगते।
गन्दा एक पिछौरा ओढे
खडी गरीबी हार
जनवरी मास आ गया।



सियाराम मिश्र

अब विष बुझी कहानी है

जब थी तब थी गगा लेकिन,
आज नयन का पानी है।

दुख जीवन का मोड मनोरम,
पथ देता है पाँवो को।
ठोकर धारा को गति देती,
तट देती है नावो को।

कभी जलद है प्यास बुझाता,
किन्तु कभी बेमानी है।

भिन्न-भिन्न सब की उडान है
किन्तु एक आकाश है
तर्कों की कतरने समेटे,
चिर जवान विश्वास है।

जब थी तब थी चादर उजली,
अब तो फटी पुरानी है।।

धोखा लगती अब हर भाषा,
राख फूल के सपने हैं।
लहरे शिलालेख लिखती हैं,
चिटके घट सब अपने हैं।

जब था तब था दूध बताशा
अब विष बुझी कहानी है।



हम बहुत घिनौने है

ऊपर से किसलय लगते हैं,
भीतर सडे हुये।
सयम है लेकिन मन के सग,
अब तक बडे हुये।
काम कठघरे के बन्दी,
आकुल मृगछौने हैं।
हम बहुत घिनौने हैं,

भीड नही दिखती है लेकिन,
उर में मेला हैं
आसमान की छत लेकर,
हर पथिक अकेला है।
भक्ति-मोतियों का न सग है,
मात्र तरौने हैं,
हम बहुत घिनौने हैं।

व्यर्थ ऊँचाई जहॉ कभी,
छाया का दान नहीं।
व्यर्थ कहानी वह जिसमें,
ऑसू का मान नही।
ऊँचे हैं हम ताड सदृश,
फिर भी अति बौने हैं।
हम बहुत घिनौने हैं।।



गीतकार मर जाता है

जब चिन्तन का बोझ हृदय को,
पा कर उम्र दबाता है।
नीरस हो जाती है कविता,
गीतकार मर जाता है।।

गीत तभी तक जीवित जग मे
जब तक मस्त जवानी है।
सरिता तब तक ही सरिता है,
तब तक शेष रवानी है।

जब सौंदर्य शून्य सागर मे,
निज अस्तित्व डुबाता है।
नीरस हो जाती है कविता,
गीतकार मर जाता है।।

गीत तभी तक अजर-अमर है,
जब तक विरह कहानी है।
शहदीली विश्वास सजोये।
प्रिय पतझडी निशानी है।

आकर काल आग अन्तर की,
जब बन शिला बुझाता है।
नीरस हो जाती है कविता,
गीतकार मर जाता है।

मिलने और बिछुडने की यह,
घूप-छॉव मे पलता है।
गीत वहॉ जर्जर हा जाता,
रूप जहॉ पर जलता है।

शापित नारी रूप अहल्या,
जब पाहन बन जाता है।
नीरस हो जाती है कविता
गीतकार मर जाता है।।

सुधि से निकला बिम्ब उकेरे,
गीत उमडता सागर है।
आग और पानी जिसमे हैं,
गीत भाव का जलधर है।

शिव का जिस पल नेत्र तीसरा
खुलकर काम जलाता है।
नीरस हो जाती है कविता
गीतकार मर जाता है।।

★★

सियाराम मिश्र

पाथर पाथर मेरा मन है

जगल जगल हुआ लुटेरा
काम कि जैसे गीत अँधेरे।
कौन बडा है कौन है छोटा
इस धुन मे नीलाम सबेरे।

प्राण-प्राण मे यह उलझन है,
पाथर-पाथर मेरा मन है।।

फागुन-फागुन हो लेता हूँ
कॉटो मे भी नागफनी के,
जो सक्षम है वह पत्थर है
उर है दया गरीब गुनी के

फूल फूल मे आज चुभन है
पाथर पाथर मेरा मन है।

धीरज नही बटोही कोई
यह बरगद की छॉह पुरानी।
गणित यही है इन सॉसो की
यह सॉसे हैं आनी-जानी।

ऑगन-ऑगन सूनापन है,
पाथर पाथर मेरा मन है।



हम किनारो को नदी कहते नही

फोड कर जो पत्थरो को हैं निकलती,
और शाश्वत गति लिये बहती सदा है।
पन्थ को माना सदा गन्तव्य जिसने,
और प्राणो की कथा कहती सदा है।
बन नही सकती कभी कचन कसौटी,
काव्य के गुण कोश मे रहते नही।।

रसभरी अनुभूति की अभिव्यक्ति कविता,
फूल कागज के न दे सकते महक हैं।
आग होनी चाहिये मन मे मनुज के
दे सके पाहन नही खग की चहक हैं।
कारखाने का धुऑं बादल बना कब,
गीत क्या हैं भाव यदि बहते नही।

गीत जैसे रेत पर रक्खा सुधा-घट,
गीत क्या है गन्ध की चुप्पी सजोये।
गीत है सन्देश, जीवन है ढला सा,
गीत ने पाषाण मे हैं फूल बोये।
खो दिया जिसने वही पाता यहॉ है,
गीत हैं रूखी गणित सहते नही।

खौलता है सिन्धु ज्यो बडवाग्नि लेकर,
और पतझड अकुरण उर मे लिये है।
ध्वस मे निर्माण की ज्यो प्रक्रिया है,
इस धरा ने जलजले जैसे दिये हैं।
लय भले हो सृष्टि तम मे, बिजलियो मे
रूप को मिट्टी कभी कहते नही।।



सदा प्रश्न बन कर जीवन

सदा प्रश्न बन कर जीवन,
मुझको दोहराता है।।

काली छाया भय खाती है।
जब दीपक जलता।
किन्तु क्रान्ति का बिगुल,
मुट्ठियो को सदैव खलता।

उर मे एक दरार सजोये,
दर्पण गाता है।

झूठ प्याज की पत्तों सा है,
न्याय सिसकता है।
जननायक की वल्गाओ मे,
सपना बिकता है।

मात्र करिश्मो का प्यासा नर
अति अकुलाता है।।

अन्धी लिपि मन्दिर मे जाकर
कालिख बुनती है।
दृष्टि परेवा की
फूलो मे ककड चुनती है।

समझौते का लोभ,
प्राण की आग बुझाता है।



कही अकेलापन न मिला है

जगल से मॉगी बैसाखी
द्वार गया हूॅ सन्नाटो के।
मिले नदी तट चलते-चलते,
सहे थपेडे कुछ घाटो के।

किन्तु न चुप का फूल खिला है
कही अकेलापन न मिला है।

मिले कही पदचाप अपरिचित
अधकार बन शूल गडे हैं।
मिले दीप ले टूटुही बाती
बिना स्नेह के रुग्ण पडे हैं।

मुझे भीड से कुछ न मिला है।
कही अकेलापन न मिला है।

है सागर ने कहा खौलकर
शान्ति नही मुझको मिलती है।
बोला शून्य रोकता हूॅ पर
नित्य चटक कलिका खिलती है।

डरा वृक्ष से पात हिला है,
कही ,अकेलापन न मिला है।



सियाराम मिश्र

अभिशापित हो गयी कहानी

एसी छुअन मिली पीडा की
पर्वत पिघल हुआ सब पानी।।

टूटन ने सकल्प सवारे
तट बैठे उदास मछुआरे।
रख दी उर पर शिला समय ने
उजडे शब्द गीत बजारे।

अधर अधर ने रेत सजायी
बादल बना अभय सैलानी।।

सॉझ लगी नभ मे गदराने
दुख आकर बैठा सिरहाने।
हर ऑगन रोया मनमारे
खग आशा के थके अजाने।

परिवर्तन ने मुँह मटकाया
अभिशापित हो गयी कहानी।

तम के राजतिलक मे कैसे
दीप लिये कोइ आ सकता।
ऑसू के खार सागर मे
कौन सुधा का घट पा सकता।

इतना धुऑ उठा उपवन मे
पगध्वनि तक हो गयी अजानी।।



मोहक अनुबन्धो पर

(एक)

मोहक अनुबन्धो पर
बोझिल इन कन्धो पर
ढोये हम कब तक गहराइयॉ।

जीवन से कटे हुये लोग,
घुटन भरे बँटे हुये लोग।
खोज रहे ब्रज की अँगनाइयॉ।

अपने ही रूप से डरे,
खाली हैं किन्तु हैं भरे।
साल रही व्यर्थ की उँचाइयाँ।

(दो)

मुद्राएँ ऐसे
धीरे से नदी बहे जैसे,
कन्धो पर अलको का नाग,
दृष्टि मधुर खेल रही फाग।

आशाये ऐसे
पडित वर कथा कहें जैसे।
डूबा है लहरो मे मन
धूप-छॉह रजित है तन।

विपदायें ऐसे,
बम आहत भवन ढहे जैसे।
स्वप्न भरा नीला आकाश,
बुद्ध खडे पादप के पास।

शकाये ऐसे
मुट्ठी मे रेत रहे जैसे।

सियाराम मिश्र

शब्दो की केचुल फाडो

शब्दो की केचुल को फाडो।
या नगापन उगलो।
मैं महामत्र सा मौन न अपना तोडूँगा।।

है सॉझ किन्तु कल सूरज नया उगायगी
उत्थान पतन के मध्य दिवस को रहना है।
कुछ अजब तरीका है दुनिया मे बसने का
मिटने बनने का क्रम बादल को सहना है।

तुम बैठ किनारे पर
मुझको निस्सार कहो,
मैं सागर की लहरो मे नौका मोडूँगा।।

अपने सॉचो से हो सकते तुम अलग नहा
स्वच्छन्द भाव जीने का दभ सजोये हो।
हर मौसम सहने वाली बन चट्टान तुम्ही।
तम-भरी गुफाओ मे अपनापन खाये हो।

तारो का नभ के दाग
बताने वालो को
मैं खीच अँधेरो की सूची मे जोडूँगा।

जब घाट-घाट पर बैठे लडन को पण्ड
उनसे दब कर बचकर प्रतिमा तक जाना है।
जीवन की प्राण प्रतिष्ठा के बलबूते पर,
मन को सयम का अविरल पाठ पढाना है।

यदि बुरा भला कहने मे
तोष तुम्हारा है
तो सहज भाव स मैं मिथ्यापन ओढूँगा।।



एक दीप बाल दो

सम्प्रदाय अधकार है जहॉ उगल रह
एक दीप बाल दा।।

हो सृजन थका थका
जहॉ अनय की हाट मे।
लोभ घुस रहा जहॉ हो
एकता विराट मे।

शष बस तिजारियो की जब उथल-पुथल रहे
एक दीप बाल दो।।

मृत्तिका प्रदीप की
अनलिखा प्रगीत है।
दभ म दरिद्र विश्व
किन्तु आग मीत है।

इसलिय कि पन्थ पर पॉव की कुशल रहे
एक दीप बाल दा।।

दे गयी क़लम जिन्हे
वक्ष म छिपा समय।
दीप द रहे उन्ह
प्राण की पकड अभय।

हा अधीर लक्ष्य भ्रष्ट मन जहॉ उछल रहे,
एक दीप बाल दा।।

यह धरा इसीलिये,
प्रेम से रहे सहे।
तैरत बढे सदैव
भूल म न हम बहे।

स्वप्न ऑख मे जहॉ अभाव ले उबल रह।
एक दीप बाल दो।

अधपका न अर्थ हो
तम तराश बन चलो।
आसुँओ को ज्योति दे
नव विकास बन चलो

नित्य खतियो मे क्रूर पल जहॉ उपल रहे।
एक दीप बाल दा।
बाज मन कली कली हो जहॉ कुचल रहे।
एक दीप बाल दो
एक दीप बाल दो।।



 सियाराम मिश्र

खो गयी पहचान अपनी

खोज मे जग की चला था
खो गयी पहचान अपनी।।

दूसरे का छीन कर चहरा,
चला अपनत्व बाने।
थे न घर क घाट के जो,
हैं लग अस्तित्व हाने।

एक हस्ताक्षर दबा हूँ।
चाहता मुस्कान अपनी।।

काट कर चम्पा चमली
रोप कर कैक्टस अजान।
आ गया हूँ दूर कितना
आरती उनकी सजान।

भीड न इतना छला है
उर बना दूकान अपनी।।

आज पत्तो का नसे भी
कॉपती हैं फडकती हैं
एक सेलानी नियति मे
बन बिजलियॉ कडकती हें।

कल कवच स मुक्ति देगी।
दृष्टि बन वरदान अपनी।।

सॉप उगत हैं यहॉ अब
दीप का इसका न डर है।
प्यास के जब तक हिरण है
गीत पथ पर अग्रसर है।

प्यार जीवन प्यार जग है
प्यार केवल शान अपनी।।

विरस बैसाखी सबेरा

कट गये हैं खेत सारे
ताल चिटके उर उधारे।
धूल ने आकाश घेरा।।

जल बिना मन मीन मारे
कूल हैं अब एक सारे
मालियो का श्रम घनरा।।

पर्वतो की देह पिघली,
मच्छरो ने नीद निगली।
हो गया पाहन चितेरा।।

छाँव वट के गेह ठहरी
सुलगती हर दिशा बहरी।
ताप ने आलस उकरा।।



झझावात बहुत है लेकिन

झझावात बहुत है लेकिन,
मैं बैठा हूँ दीप जलाये।।

देहरी से कानो मे आकर
कही छनक कर पायल बजती।
स्वप्न भरे नयनो मे पलछिन
बन कामना दुल्हन है सजती।

समय सतत हिमपात कर रहा
पलको ने कॉटे दुलराये।।

भीड बहुत ऑगन मे मरे
कभी दुखो की कभी सुखो की।
वर्तमान का टूटा दर्पण,
कभी जीर्ण पुस्तक नुस्खो की।

सन्देहो के घने तिमिर मे,
इन्द्रधनुष नव सृष्टि रचाये।।

अधकार हो या प्रकाश हा
दोनो पर अधिकार तुम्हारा।
हार गया है वह जीवन से,
जो निराश बन मन से हारा।

कैक्टस के वन मे बैठा हूँ,
मैं बेला के फूल खिलाये।।
मैं बैठा हूँ दीप जलाये।

☆☆

विरस बैसाखी सबेरा

कट गये हैं खेत सारे
ताल चिटके उर उधारे।
धूल ने आकाश घेरा।।

जल बिना मन मीन मारे,
कूल हैं अब एक सारे
मालियो का श्रम घनरा।।

पर्वतो की देह पिघली,
मच्छरो ने नीद निगली।
हो गया पाहन चितेरा।।

छाँव वट के गेह ठहरी,
सुलगती हर दिशा बहरी।
ताप ने आलस उकेरा।।



झझावात बहुत है लेकिन

झझावात बहुत है लेकिन
मैं बैठा हूँ दीप जलाये।।

देहरी से कानो मे आकर,
कही छनक कर पायल बजती।
स्वप्न भरे नयनो मे पलछिन
बन कामना दुल्हन है सजती।

समय सतत हिमपात कर रहा
पलको ने कॉट दुलराये।।

भीड बहुत ऑगन मे मेरे
कभी दुखो की, कभी सुखो की।
वर्तमान का टूटा दर्पण,
कभी जीर्ण पुस्तक नुस्खो की।

सन्दहो के घने तिमिर मे
इन्द्रधनुष नव सृष्टि रचाये।।

अधकार हो या प्रकाश हो
दोनो पर अधिकार तुम्हारा।
हार गया है वह जीवन से,
जो निराश बन मन से हारा।

कैक्टस के वन मे बैठा हूँ,
मैं बेला के फूल खिलाये।।
मैं बैठा हूँ दीप जलाये।



 सियाराम मिश्र

दीपक से यह मिली प्रेरणा

दीपक से यह मिली प्रेरणा
जल जल कर इतिहास बनाऊँ।।

आवारा पॉवो ने पाया
सदा पन्थ जाना पहिचाना।
शान्त सरोवर के भीतर है
उथल पुथल का गीत पुराना।

मिली फूल से प्राण-भावना
मैं विकसित हो गन्ध लुटाऊँ।।

सूरज ने न कभी सोचा है,
नित्य किन्तु हैं काली राते।
और सिन्धु के ऊपर होगी,
कालचक्र मे पवि की घाते

कहा नीद ने यही नयन से,
लौट लौट कर तुम तक आऊँ।।

सुना कि अपना दुख कहने से,
मौसम यहॉ बदल जाता है।
इसीलिये तो सॉझ सेबेरे।
व्योम क्षितिज मे कल पाता है।

तिनको ने विश्वास बॅधाया,
मैं चुन चुन कर नीड बनाऊँ।।

☆☆

सियाराम मिश्र

रही सही जितनी है काफी

रही सही जितनी है काफी
वह भी सीमा टूट न जाये।।

यदि सुधियो का तारतम्य है
बलिपथी हित क्या अगम्य है।
प्रेम मिलन के आकर्षण का
हर मधुरिम झोका प्रणम्य है।

कल्पवृक्ष है यहाँ सन्तुलन,
नभ धरती से रूठ न जाये।।

लघुता की जग मे सीमा है
खालीपन मे पर्त पर्त है।
नीडो की लक्ष्मण रेखाये
पगडन्डी मे निहित शर्त हे।

उगते हुये विटप से मन को
पागल पतझर घूँट न जाये।।

नित्य अगर अथ होते पथ मे
यह बोझिल सघर्ष न होत।
साँस अगर मूल्यो मे होती
कविता मे अपकर्ष न होते।।

परिशोधित भावना वारि से,
जीवन का घट फूट न जाये।।

☆☆

सुन्दरता मे नित्य नहाऊँ

सुन्दरता मे नित्य नहाऊँ
मेरी कोई चाह नही थी।

लोभ बना मेरा मछुआरा।
तुम मछली सी बनी जाल की,
रहा देखता काँटा चारा।
छवि न कभी उर पली ताल की।

कई जन्म तक तुम्हे निभाऊँ,
मेरी कोई चाह नही थी।।

स्वेटर सा बुनता हूँ तुमको
केवल श्रम का विनिमय पाने।
इच्छा से विपरीत तुम्हारी,
चला अकेला पथिक अजाने।

तुमको अपनी बीन बनाऊँ
मेरी कोई चाह नही थी।।

अधरो की कुछ छुअने देकर,
ज्यो कोई प्याला रख देता।
भटका कोई योगी जैसे
माला मृगछाला रख देता।

तुमको उर का गीत बनाऊँ
मेरी कोई चाह नही थी।।

तुम शोभा दुकान की मेरी,
साधन ग्राहक को ठगने का।
इसीलिये मत्रों मे बाँधा।
अवसर हो न तुम्हे जगने का।

तुम पर अपना प्यार लुटाऊँ,
मेरी कोई चाह नही थी।।

त्याग करूँ, या भोग करूँ मैं,
उर्वर हो देवत्व तुम्हारा।
लज्जा ने आभूषण बन कर,
जब चाहा अस्तित्व नकारा।

मैं शिव सा सिर पर बिठलाऊँ
मेरी कोई चाह नही थी।।

जेठ महीना है

जेठ महीना है

बिजली के पखे कूलर मे,
लटकी दोपहरी।
राशन की लाइन सपनो मे
लिये व्यथा गहरी।
सूखी सूखी साँसे,
पानी क्षण क्षण पीना है,
जेठ महीना है।।

सुबक रही फसले
डीजल का ले अभाव भारी।
जाने कैसा मौसम
हुयी दवाये हत्यारी।
पॉवो तक आता सिर का
निरुपाय पसीना ह
जेठ महीना है।।

किसी भाड के ईंधन जैसा
मन रह रह जलता
लू ज्यो गरम हथौडा मार
प्यास पथिक चलता।
धरती जलती तप्त तवा सी
दूभर जीना है
जठ महीना है।।



अस्पताल मे भोर हुयी है

एक आर तडपन कराह है
अन्तिम साँसे एक ओर हैं।
अथक घिनौनापर अछोर हैं,
बरतन से झाडू टकराते।
सिसिऑइधि घनघोर हुयी है।
अस्पताल मे भोर हुयी है।

नर्सों की बोझिल पदचापे,
शिशु बीमार देख भयखाते।
रोग बुढापा कुछ बूढो का
पीकर चाय गला गरमाते।
कुछ पर अतिथि मनो की उथली
बस करुणा की कोर हुयी है।
अस्पताल मे भोर हुयी है।।

भाग्य-प्रशासन कोस रहे वे,
जिनकी जेबे खाली खाली।
प्रभु भी क्रूर लग रहा उनको
जिन्हे मिली ऑसू की डाली।
प्रकृति डाकुओ की भी इस थल
आकर के गमखोर हुयी है
अस्पताल मे भोर हुयी है।

सरकारी अनुदान दवाये
सब प्रभात के पूर्व बिके हैं।
हृदय हुये चट्टान सभी हैं
शोषण छल बन त्याग टिके हैं।
अब तक जो जीवनदायिनि थी।
पूर्ण व्यवस्था चोर हुयी है।
अस्पताल मे भोर हुयी है।।

भीड जुडी देखी जो पाया
रुग्ण किसी नेता का भाई।
असहायो को छोड जुटे हैं,
भ्रमर चिकित्सक सहज कसाई।
तब तक हाय मर गया डाक्टर।
उस कोने से रोर हुयी है।
अस्पताल मे भोर हुयी है।

कुछ देखी लावरिस लाशे,
कोई पास न रोने वाला।
कुछ व्याकुल खोजते मिले फिर,
वाहन शव को ढोने वाला।
जब से देखी सुबह यहाँ की
मन मे बहुत मरोर हुयी है
अस्पताल मे भोर हुयी है।।

☆☆

सियाराम मिश्र

प्रिय तट के उस पार न देखो

वहॉ न होंगी सुन्दर लहरे
और हसिनी सी नौकाये।
कूल न होगे वहॉ मनोहर
मिलन विरह की मधुर कथाये।

फूलो मे अगार न देखो
प्रिय तट के उस पार न देखो।।

जो सुरम्य है वही परम प्रिय
नित्य वही जीवन बन आता।
जो जीवन है सत्य और शिव,
है अशेष नैराश्य लुटाता।

चिन्तन मे पतझार न देखो,
प्रिय तट के उस पार न देखो।।

दुलरायेगा यह जग सारा
प्रेम पन्थ पर अगर अकेले।
प्रतिपल मान महोत्सव चल दो
किसके साथ गये हैं मेले।

तुम रवहीन सितार न देखो
प्रिय तट के उस पार न देखो।।



सियाराम मिश्र

आज हो गया है मेरा गॉव

मन्दिर मे पुलिस के प्रबन्ध सा
आज हो गया है मेरा गॉव

जगह जगह
बिजली के बिल जैसा बर्तावा।
शहरो से
कटे कटे रहने का पछतावा।

फूलो मे पत्थर के छन्द सा,
आज हो गया है मेरा गॉव।।

कजली के गीत पिये
ट्रेक्टर की धुन।
सावन के झूलो मे
है उधेडबुन ।

रेशम क अनमिल पैबन्द सा
आज हो गया है मेरा गॉव।।

एक लगी
है बहने धार।
साफ नदी जो थी
वह हो गयी शिकार।

बच्चे के कसे जारबन्द सा,
आज हो गया है मेरा गाँव।।



जाने क्या हो गया

जाने क्या हो गया
हमारे इस मन को
चित्र सभी कठमुल्ले जैसे लगते हैं।।
जूठन लगते हैं,
जग के व्यवहार सभी।
लीक पीटते लगते हैं,
अधिकार सभी।

मार गया लकवा सा
जैसे चितवन को
शब्द प्रात के कुल्ले जैसे लगते हैं।।
पहल धोखा था
या अब भ्रम पाले हूँ।
लिप्त निठल्लेपन मे,
बैठे ठाले हूँ।

बदल गये सब अर्थ
फूँक कर बन्धन को
नयन जल बुझे गुल्ला जैसे लगते हैं।।
एक तरह के
लगते सभी कथानाक हैं।
मिलन विरह
सुख-दुख क रहे न मानक है।

झाँसे पाँसे बने,
गीत यह जीवन का।
पूजा-पात्र मरूल्ले जैसे लगते हैं।।
मन्दिर-मस्जिद गुरुद्वारे,
हैं घोंघ से।
घेर रहे मानव को,
सभी जमोघे से।

हर ऊँचाई ओढ रही
बौनेपन को-
महल रेत क रुल्ले जैसे लगते हैं।।
कहते आये हैं।
कुर्सी है काँटो सी।
लू के क्रूर थपेडो जैसी
चाँटो सी।

फुटवाली था रूप मिला
सिंहासन को
अब अँगार रसगुल्ले जैसे लगते हैं।।

★★

टपक रहा बूँद बूँद पानी है

छपर छपर निकल रहे,
पशु है गलियारे मे।
लगता धरसोल हुआ
ऊपरी पनारे मे

लगती निरुपाय हुयी छानी है
टपक रहा बूँद-बूँद पानी है।।

जहाँ भी खिसकते हैं,
भीग वही जाते हैं।
ठडी बौछारो से
देह को बचाते हैं।

मन करता अपनी कुछ और ही किसानी है
टपक रहा बूँद-बूँद पानी है।।

बार-बार मार रहा
डुम्मी यह बछडा है।
छप्पर का टूट टूट,
गिर पडता कचडा है।

पावस की वृत्ति आसमानी है
टपक रहा बूँद बूँद पानी है।।

पास खडे पेड को
जुगनू जग मग करते ।
चिडियो के नीड सजग
झोको से हैं डरत।

अम्बर मे उमड घुमड मघ हुआ दानी है
टपक रहा बूँद-बूँद पानी है।।

**

धूप करे हस्ताक्षर

सियाराम मिश्र

टूटा एक मकान मिला है

टूटा एक मकान मिला है रहने को,
उसमे तुलसी का विरवा लहराता है।।
दिशा-दिशा मे तूफानो के झोके हैं
जाने कैसे जड का इसकी रोके हैं।
एक प्रदूषित नदी मिली है बहने को
बहता हूँ इस लिये सिधु से नाता है।।

मलयानिल का घेरे है सत्रास घुटन
लगा रहा तन मे कीचड का अब उबटन
पथ भूली हर पीर मिली है सहने को
ज्वालाओ स घिरा-घिरा कवि गाता है।।

वश बदल कर पाण्ड प्रतिमा छापे हैं
पूजा क मन्तव्य सभी ने भॉपे हैं।
दुखिया को अधिकार मिले हैं कहन को-
तम मे जाने कौन पुजापा खाता है।।

छोड दिया है कबसे यमुना तट जाना
ब्रज की गलियो का फिर-फिर चक्कर खाना।
राजी हूँ कब से निर्गुण मत गहने को-
फिर भी कान्हा द्वार बहुत खटकाता है।।

कार्ड धारका की लम्बी है पक्ति बडी।
थाड राशन पर सबकी है दृष्टि गडी।
कौन सुनेगा मरे उग्र उरहने को,
जन जन अपनी चौपड आज विछाता है।।

★★

चौराहे के बल्ब जल उठे

चौराहे क बल्ब जल उठे
शाम हो गयी है।।

नुक्कड नुक्कड चाट खा रहे,
घिरे-घिरे ठेले।
छविगृह मे टिकटो की खातिर
हैं मादक रेले।

नीड प्रतीक्षा विकल हो उठे,
शाम हो गयी है।।

भीड उगलते मजदूरो की,
थके कारखाने।
बस-वस छूट न जाये,
बाबू चले भृकुटि ताने।

कोठे थिरके गजल हो उठे,
शाम हो गयी है।।

सुनने लगे उबाऊ चचा,
फिर होटल वाले।
राजनीति साहित्य समेटे
कुढन घुटन पाले।

मधुपायी दृग चपल हो उठे,
शाम हा गयी है।।

फैशन का बाजार सजाये,
सडके भरी-भरी।
ताक रह फुटपाथो को कुछ,
धरे शीश गठरी।

सार्वजनिक नल सजल हो उठे,
शाम हो गयी है।।

★★

फिर सूरज उग आया

घन जैसा मारता,
फिर सूरज उग आया।

लोहे सा पीट कर,
झको यह ढालेगा।
श्रम के कुछ बिन्दु सतत
मेरा तन पालेगा।

गुडी की दृढ पट्टी सा,
शोषण ने चुभलाया।।

प्रेम बना क्रय विक्रय,
हैसियत अधीर हुयी।
मान्यता पुरानी जो
पानी की लकीर हुयी।

देह के मुलम्मो से,
फेर कबीर अकुलाया।।

मेरा सम्बन्ध हुआ
पत्ता ज्यों चाट का।
धोबी के कुत्ते सा
घर का ना घाट का।

ुठली सा आम की,
ह रह मुझ को खाया।।
न जैसा मारता,
फ़र सूरज उग आया।।

✿✿

लडता है अब तट सागर का

लडता है अब तट सागर का,
विकृत ज्ञान के पावों से,

अवाबील है घात लगाये,
गौरेया के दाने पर।
हर पैंताना आग उगलता,
अपने ही सिरहाने पर।

गीत जवानी की मल्हार का,
त्रस्त कटे प्रस्तावो से।।

ऐसा कुछ परिवर्तन आया,
क्षणिकाये शेक्सपियर हुयी।
पत्थर फूलो मे घुस आया
चट्टाने ग्लेशियर हुयी।

नाविक भागीरथी नाव का,
डरा अपिरचित नावो से।।

सहमी हुई चारपाई है
आयातित कुछ गददो से।
खिडकी खोल विचार खडा है,
आतकित लिपिबद्धो से।

दुबक रहा सूरज उधार का
अब रिश्तो की छॉवो से।।



पावस की रात मे

पावस की रात मे
व्योम बना एक अलगनी बडी
लटक रहे गूदड से मेघ
या जैसे काली बिल्ली कोई,
दौड रही चूहो क। घात मे
पावस की रात मे।।
जैसे हो गॉव के सरोवर मे
जलकुभी और कुमुद साथ
या हो रक्त कमल म्लान
साथ मे मुहासो के
श्याम वर्ण लडकी का माथ
बालो मे टॉक गया जैसे कोई
बेला के फूल कुछ बिगडे
अनुपात मे।।
जैसे हो घूर पर
खबहा क फूल
काली सी स्लेट पर खडिया के शब्द
बादल जैसे निर्मन तन मे
विष हो सुकरात के
पावस की रात में।।
धब्बे ज्यो-दर्पण मे
घन जैसी राजनीति
अम्बर सा सत्य
या फिर निरुपाय बनी डाकू के घर
करती हो लडकी ज्यो नृत्य
गहराया रग पात पात मे।।
राजा है अँधियारा
मन है सौदामिनि सा
काम के जुगनुओ ने
एक स्विच दबाया है मौसम का
पुरवाई जैस हा तेल मल
सूरज क गभुआर गात मे
पावस की रात मे।।



 सियाराम मिश्र

दुबक रही है मेड खेत की

दुबक रही है मेड खेत की
नियमो के धमकच्चर स।।

सिमट गये खलिहान बेचारे
चरागाह कृशगात हुये।
जो फैली थी भूमि प्रेम सी
उस पर इतन घात हुये।

बागो ने कृषि फसले ओढी,
जनसख्या की पच्चर से।।

है अभाव मे टूटा फाटी,
साल रही चिन्ता कल की।
मेघ चुनौती देते लगते
औकातो को नर बल की।

थके प्रगति के पॉव लड रहे,
परम्परा के खच्चर से।

पी लेती खुद दूध दुदहडी
शिशुता हुयी चतुर यौवन।
जहर मुरक्षा का पी कर के
हर बक्खारी जिये घुटन।

साधन की गाडी उधार की,
पहिये ढच्चर ढच्चर से।।

✲✲

कैसे गीत जियेगा मेरा

कैसे गीत जियेगा मेरा,
अब केवल कोरे सपनो मे।।

कार्यालय घर और हाट का,
एक त्रिकोण साथ रहता है।
भावो से जब शब्द छलकते,
रेतीला तट कुछ कहता है।

इस बेरुखी हवा मे कैसे,
निभ पायेगे हम अपनो मे।।

उदर भुलाने को आतुर है,
मुझको देह रक्त की भाषा।
गाय और कुत्ते की राटी,
यह भी हैं पा रहे दुराशा।

कैसे जड तक पहुँच सकेगे,
उलझे डालो और तनो मे।।

रहने को तो एक लढी के,
नीचे सारा घर रह लेता।
जाडा गर्मी ओला पानी,
प्रेम विवशता मे सह लेता।

इसका मतलब हम विचरेंगे,
सदा सदा क्या ठूँठ वनों में।

सभी मधुप चिडिया बन बैठे,
व्यर्थ सुमन खिलते लगते है।
उर से उर तो दूर बहुत हैं,
मात्र हाथ मिलते लगते है।

सच्चा पथिक सूर्य खोया है,
पावस के अति घोर घनो मे।।

लगभग जगल समा गये हैं,
आबादी के इस जगल में।
रोते हैं आचरण रूप के,
कुर्सी के घन के दगल में।

नगे पर्वत विषधर नदियॉ
पॉव जमाये भग्न मनों में।।

✯✯

श्रेय किसी का काम किसी का

कैसा यह विचित्र जीवन है
या कोई सयोग अजाना।
आँखे नित्य ठगी सी उन्मद,
यह खिलना है या मुरझाना।

मिली प्रगति है ठहरावो मे,
गति मे मिला विराम किसी का।।

जब दीपक ने उगली कालिख
तो तम की सगति क्या होगी।
मृगछाला मे दाग मिले जब,
यौवन धनी विरति क्या होगी।

गाता कोई गीत ध्वस के,
स्वर होता बदनाम किसी का।।

जान हथेली पर अपनी रख,
जब पावक मे जला सिपाही।
अधिकारी ने ज्योति बटोरी,
पौरुष को बस मिली सियाही।

अभियन्ता नल नील बने थे,
होता अविरल नाम किसी का।।

☆☆

सियाराम मिश्र

मेघ मत करो गीला आँगन

मघ मत करा गीला आँगन
ब मौसम बरसात से।।

पकी फसल खेतो मे मेरी,
घर की ओर निहार रही है।
फागुन का मौसम देवर ने
कथा न उर को खोल कही है।

आया नही प्रणय का पाहुन।
रस लकर मधुवात से।।

आयेगे कल गौना लेने,
चार अतिथि मेरे दरवाजे।
सीलन पा कर बज न सकेगे,
अन्तर तम के गाजे बाजे।

होगे मन के नूपुर उन्मन।
इस अनियोजित घात से।।

देख सकूँ मैं प्रिय को तुम मे,
ऐसा समय नही है आया।
नाम रूप से भिन्न अभी तक,
गीत नही मैंने है गाया।

चढता हुआ सीढियाँ यौवन,
ज्योति न छीनो प्रात से।।

जी लेगे सन्यास अभी तो,
तन जीने का अवसर दे दो।
जिसका हर दिन प्यार पुकारे,
वह मुझकों सम्वत्सर दे दो।

तुमको डर सत्ता का अपनी
मुझे अकेली रात से।।

☆☆

प्रिय फागुनी शिकायत जैसी

प्रिय फागुनी शिकायत जैसी
आओ पी ले चाय,
और नये अनुबन्ध सजायें।।

कार्यालय का सोच समेटे।
धनुष करो मत तन।
जिये अमर सौगन्ध प्रेम की,
प्यास जिये पल छिन।

ममता भरी हिमायत जैसी,
आओ पी ले चाय
और प्रबल सम्बन्ध उगाये।।

नही रेत पर लिखा हुआ,
कुछ किस्सा जीवन है।
मृगजल रेगिस्तान नही,
गुदना है, गुजन है।

लिपि की तनिक किफायत जैसी,
आओ पी ले चाय
और अधर मकरन्द उडाये।।

खनक रही चूडी सी
यह काटती चिकोटी है।
बतरस में उत्पात सदृश।
मक्खी सी रोटी है।

थोडे मे बहुतायत जैसी
आओ पी ले चाय
और स्वरो मे छन्द उगाये।।

लदी हुयी फूलों से पकडें,
उचक उचक डाली।
मरी घडी को सहज निकाले,
प्रेम भरी गाली।

घूँघट बीच विलायत जैसी
आओ पी ले चाय
और सुमन में गन्ध जगायें।।



धूप करे हस्ताक्षर

धूप करे हस्ताक्षर
यह तो जचती है कुछ बात
देता यहाँ प्रमाण पत्र अँधियारा है
बगुले उडने मे हसो से आगे हैं
सागर मन्थन करते कच्चे धागे हैं।

धनपति हो सौदागर
यह तो जचती है कुछ बात
दया कोश का मालिक शठ हत्यारा है।।
राजमार्ग हैं भीख माँगते गलियो से
किसमिस की आकाँक्षा विष की फलियो से।

मोती दे रत्नाकर
यह जो जचती है कुछ बात
छुरी लगाती आज अहिसक नारा है।।
तेली के हैं बैल घुमक्कडराज बने।
गीत लुटेरो के युग की आवाज बने।

अचल हिमालय भूधर
यह तो जचती है कुछ बात
यहाँ लिये ठहराव खडा बजारा है।।



सियाराम मिश्र

काया दर्प उगलती है

दीवालो की छाया
घर की धूप निगलती है।।

हम प्रकाश क मालिक
ऑगन बडा नही करत।
लिय प्रेम की सुरसरि
हिमगिरि खडा नही करत।

बुद्धि विषमता उगले
काया दर्प उगलती है।।

पीने लग फूल अपना हें
गन्ध अँधेरो मे।
डसता लगता है दुल्हन का
कोई फेरो म।

चौखट फिर फिर अपने
वन्दनवार बदलती है।।

गिद्ध बहुत हैं नय
जा कि जीवित का खात हैं।
एक लोथडे पर मित्रो की
नाव डुबाते हैं।

हिम पिघला करती थी
अब चट्टान पिघलती है।।

जैसे बकरी बार-बार
बिरवो को खाती है।
उगी फसल पर आ
बदली आला बरसाती हे।

पुरस्कार क हेतु किन्तु कब,
कलिका खिलती है।।

★★

कोई रोक न पायेगा

कोई रोक न पायेगा
अब प्रभात की लाली को।।

हर बैसाखी टूटेगी
हर ॲधियारा रोयेगा
न्याय नही धीरज अपना
हॉफ हॉफ कर खोयेगा।

कोई झोक न पायेगा
अब बेवजह दलाली को।।

खाली जेब न घूमेगे,
अब यह श्रम के दीवाने।
दीवारो को तोडेगे
यह मजिल के परवाने।

रात नही हैं, हम दिन हैं।
जीना है खुशहाली को।।

अपनी छॉव बनायेगे
अपना गॉव बनायेगे।
बात करेगे फूलो से
हट कर दूर बबूलो से।

हम मिल जुल कर रह लेगे,
ठोकर दे कगाली को।।

अपनी है पहचान बडी,
है दुनिया की दृष्टि गडी।
देख हमारे सावन को,
सुन्दर यौवन-बचपन को।

नफरत बदल न पायेगी
अपनी प्रेम प्रणाली को।।

बिना जला चूल्हा न रहे
बिका हुआ दूल्हा न रहे।
जाति पॉति का भेद न हो
भूला श्रम का वेद न हो।

स्वार्थ न छलने पायेगा
अब उपवन के माली को।।

कविता के दरवाजे पर ताले है

धीरे-धीरे हें टीले पर्वत बन बैठ
हम जग लगी कर मे कुछ लिये कुदाले हें।।

कब निपट सकी है बिल्ला अपन पजा स
खूॅखार भडिये बैठ हें चौपाला मे
मछली बगुल या हस सभी तो व्याकुल हैं
जाने किसन विष घाल दिया है तालो मे।

सॉपो को दूघ पिलाने की सीमाये हैं
खुद घर के पत्थर हमने आज उछाल हैं।।

जब अन्धकार न सूरज का धमकाया है
इस प्रलय काल मे दापक स क्या हाना है।
जब थाम लिय हैं शस्त्र मोन न हाथो म
यह जीवन भिक्षुक की भिश्वा का दाना है।

है रिस रिस पूरी दह भर गयी घावो से
हमने टिचर के मात्र बूॅद दा डाले हैं।।

हा गये हादसो क जगल क वासी हम
हैं शेष शाक प्रस्ताव हमारी भाषा म।
यह मान लिया ऑसू ऑखा की पूॅजी हैं
उपमाये कमलो की दब गयी कुहासा मे।

हैं ललित कलाये सपना धन क चक्कर मे
अब कविता क हर दरवाज पर ताले हैं।।



शरद आ गयी है

धुनकी रूई धुनकती बोली
शरद आ गयी है।।

रक्त कमल के छद ताल मे
कवि सूरज गाये।
दुपहरिया **के फूल धरे** सिर
पर्वत मुसकाये।

खजन पक्ति फुदकती बाली,
शरद आ गयी है।।

घोर तपन के अट्टहास ने
अब अलविदा कहा।
स्वेटर बुनती धूप उतरती
तम ने रूप गहा।

विवश गरीबी रूक कर बोली
शरद आ गयी है।।

फुटपाथो पर सोने वाले
चिन्ता मे डूबे
मरहम बनी रजाई
खुश हैं घायल मन्सूबे।

पायल नयी ठुनकती बोली
शरद आ गयी है।।

हुये शीतगृह जैसे शीतल,
कार्यालय सारे।
दिन भर चाय ढो रहे नौकर
हैं गुटकी मारे।

कुतिया नीद उचटती बोली,
शरद आ गयी है।।

**

कारवॉ से जुड गये

नीव के पत्थर रह जा
वे हवा मे उड गये।।

हाथ ने घिस कर स्वयं को
जो सडक दी देश को।
पीठ घोडो की बनी वह
निगल कर परिवश का।

था गुबारो से जिन्हें भय,
कारवॉ से जुड गये।।

बन गये छेनी हथौडा
पुल नये इतिहास क।
विष पिलाते थ कभी जो
हैं कृषक मधुमास क।

ज्योति के वाहक न जाने,
किस गली में मुड गये।।

हैं पुरान आज सॉचे
टूट कर जर्जर हुये।
और नूतन ध्वस-प्रण कर
अति मुखर बर्बर हुय।

जठ मे जो लहलहाते,
जल निखिल सेंहुड गये।।

ज्योति के वाहक न जान
किस गली मे मुड गये।।

☆☆

इस तरह जियो।

एक एक क्षण को
तुम इस तरह जियो
धूप ज्यो उतरती है घाटी मे।।

माना पथ छोड कर चले
प्रणयी अनुबन्ध मनचले।
कसक रहा कूल पोर-पोर,
ऋतु मे बारूद ज्यो पले।

बूँद-बूँद विषको
तुम इस तरह पियो।
रस रस ज्यो स्वाद घुले माटी मे।।

बोझिल श्रृगार से हुये,
प्राणो के दीप अनछुये।
ऑधी के आम हो गये
महुआ जो अब ललक चुये।

टॉक टॉक चादर को
इस तरह सियो
जैसे शिशु शब्द लिखे पाटी मे।।



सियाराम मिश्र

आओ तुम आओ।

गीत की तरह नही, फूल की तरह नही
ओस की तरह नही तोष की तरह नही।
लोहा का पीटते आओ तुम आओ।।
धूप की तरह नही रूप की तरह नही
इस तरह नही कि ज्यो नदी बहे।
चोरो की मार की तरह आओ तुम आओ।।
तकली के नाच की तरह शीशा की किर्च की तरह
सैंडिल की किरकिरी लिये आआ तुम आओ।।
आग लगे घर जैसे बिक हुये वर जैसे
विवस एक नृत्य लिये पोपट मुख भृव्य लिय
पर्वत की भूख से आओ तुम आआ।।



यह उल्टा पल्ला है

हील लगी सैंडिल है
यह उल्टा पल्ला है।।

बैठ कर मुँडेर पर
बडे बोल बतियाना।
लडको का देखना,
दिन भर आना-जाना।

काजल है कानो तक
देखता महल्ला है।।

तीर्थों के पण्डो सा,
दृष्टि का पुजापा है।
गहरे से इस मन को,
कब किसने नापा है।

खाट पर पडी बुढिया,
नित्य रही झल्ला है।।

चूल्हे पर खिचडी है
देसी घी सपन हुआ।
इस तरह बनावट मे,
हर मौसम तपन हुआ।

शनि जी से लडने हित
उँगली मे छल्ला है।।

बिल्ली के और पले,
पिल्ले हैं, कुत्ते के।
मिलते है शब्द जिन्हे
मात्र कुकुरमुत्ते के।

भाई है एक बडा
साड जो निठल्ला है।।

खाल का ढका बिस्तर,
पत्तों से क्रीम की।
कडुआपन बात का,
समता है नीम की।

ब्याह के समय से
पतिदेव का पुछल्ला है।।

❀❀

 सियाराम मिश्र

रभा रही है गाय दुआरे

रभा रही है गाय दुआर
हुमक रहा बछडा
बोझिल पलके बडी बहू उठ दही बिलोती है।।

गल बँधा है काला कपडा
नजर न लग जाय।
उँगला रख अधरो पर
बछडा पकडे कुछ गाय।

लज्जा डूबे शब्द
न कोइ बाकी है पचडा
दुहती दूध बहू छाटी मन प्राण भिगोती है।।

घर ऑगन की धरती
जैसे दीप जलाती है।
होकर प्रणय विभार
गली रह रह इठलाती है।

घर का स्वर्ग छोडकर
जैसे होता मन कचडा
जर्जर बखरी महुआ सी मुस्कान सजोती है।।

चील बिलौआ हुयी
लालिमा एडी के रग की।
जैसे हो श्रृगार सजाय
कविता शिशु ढग की।

सम्हल न पाता उर का आचल।
जाडा हुआ कडा
बडी बडप्पन बोती छोटी सपना बोती है।।

हर परिचित का मन
आने को लालायित रहता।
भीतर आकर पत्थर भी
फूलो सा कुछ कहता।

पतझर भी मधुमास बसा कर,
होता यहॉ बडा
दृष्टि पलक झपकाने का, क्रम बरबस खोती है।।

☆☆

तन है सादा गॉव

उथली उथली घातो मे
प्रिय गहरी जैसी हो।।

बिहॅस चन्द्रमा नदी नहाये,
लगती देह भली।
फूलो लदी डाल सा यौवन,
गति यति लचकीली।

चढती और उतरती,
चुस्त गिलहरी जैसी हो।।

एक चुलबुली सी बुनती हो
लहरो जैसी हो।
अल्लडपन मस्ती से तुम
गुलमोहरो जैसी हो।

तितली जैसी अचल
लेकिन ठहरी जैसी हो।।

कनखी मे आग्रह का ईगुर,
मौन बोलता सा।
ठगा ठगा अस्तित्व समय का
नीद खोलता सा।

तन से सादा गॉव
भाव मे शहरी जैसी हो।।

प्यास लिये विस्तार मधुरतम
लज्जा की लाली।
लिये थिरकता मन हो,
जैसे पारा की थाली।

अधरो से शहदीली
अलस दुपहरी जैसी हो।।

बिके गवाहो सा फिसलन का
एक राज्य पाले।
और आधुनिक न्याय सरीखा,
अवगुठन डाले।

अग अग बैरिस्टर,
सजी कचहरी जैसी हो।।



फागुन के दिन

बन्धुता सनेह की
लीक पीटती हवा।
प्रेम जब हुआ महान,
पीर की बना दवा।
हर खिडकी आहट मे
दिवस रही गिन
फागुन के दिन।।

लका से स्वार्थ मे
अन्जनी कुमार।
चन्द दिन नकद यही
शेष सब उधार।
ठूठो के ऊपर ज्यो
बैल है गाझिन।
फागुन क दिन।।

महानगर भर तुषार,
एक गली प्यार की।
अम्बर भर रेत मे
कलिका कचनार की।
घुटन भर कल्प मे
महक भरे पल छिन।
फागुन के दिन।।

इस बबूल क वन में
एक पेड आम का।
सागर सी भूल मे,
एक बूँद नाम का।
कागज के जगल मे
एक आलपिन।
फागुन के दिन।।

☆☆

 सियाराम मिश्र

प्यार कहा है आज किसी ने

प्यार कहा है
आज किसी ने
उडो कबूतर।।
आज फोड कर पत्थर
छोटी नदी बही है।
हरसिगार की या महुआ की,
कथा कही है।

मीठा मीठा दर्द सहा है,
आज किसी ने
उडो कबूतर ।।
पख न तितली के नोचेगा,
कोई बालक कल से बिल्कुल।
साधु वेश मे नही छलेगा,
कोई दानव कल से बिल्कुल।

फिर सपनो का पथ गहा है
आज किसी ने
उडो कबूतर।।
दाँत दूध के आज न बाँधे,
विष की थैली,
फल उनको मिल गया,
कि जिनकी चादर मैली।

नफरत का प्रासाद ढहा है
आज किसी का
उडो कबूतर।।

★★

है डाट रहा यह ताड

है डाट रहा यह ताड
समूचे परिसर का।
यह मन्द समीरण कोन शब्द है बोल रही।।

छाती का घडकन
थी पूजा की कडियो सी।
दिन भर की शैली
अब कुठा की घडियो **सी।**

है वर्ष गॉठ-
ज्यों चट्टानो मे रूकी नदी
कसमसा रही अन्तर बाहर का ताल रही ।।

वीरान और बंजर न बने
यह आलिगन।
इसलिय दृगो का
साथ निभाता आकुल मन।

है गीत नही कुछ और
एक भावना खगी।
घर की खिडकी से निकली नभ मे डोल रही।।

है कोहरा सा
हार मन के अब पॉवो पर।
न्याछावर यायावरी।
डूबती नावो पर

स्वर वीणा उर की
जली पट की ज्वाला स
लॅगडा परिचय काले पृष्ठो का घाल रही।।

☆☆

गोबर पथनी बात तुम्हारी

गोबर पथनी बात तुम्हारी
राजकुमारी हो।

बीने हुये बेर की गुठली
जैसी गडती हो।
फैशन की आतुरता मे
पसरी सी पडती हो।

बस्ता बना रूप की खती
तुम पटवारी हो।

बाहर प्लास्टर है
भीतर अति ऊबड खाबड है।
सिर से बढ कर मूल्य मॉगता,
केवल जो घड है।

बुनकर सतत मुखौटा
तुम धनवान भिखारी हो।।

मैने तुम मे मस्त पवन सा,
बहना देखा है।
एक नदी के पास
नदी का रहना देखा है।

जोकर की पुतली सी
फिरती मारी मारी हो।।



है शब्द रेगते बौने शिष्टाचारो के

सहमी दुबकी है किरण
कुहासी घातो मे
है शब्द रेगते बौने शिष्टाचारो के।।

कितना भी निशिदिन लेप करो,
हाता है क्या,
भिदता न स्नेह है
अतिशय मोटी खालो मे।
है बैठ गया आकाश
सिकुड् कर पिजड मे
गति ने उलझन भर दी।
नौका के पालो म।

चिथडो की क्या है,
वे जैसे थे वैसे हैं
गायब लेकिन शुभ समाचार अखबारो के।।

मिथ्या लगती हैं
अब नैतिकता की बाते।
हर दिशा सत्य को
मुँह मटकाती लगती है।
है घिरा सरोवर
अति भुतही चट्टानो से
अब रात देखकर
नीद नयन से भगती है।

सपने बर्बर हो गये,
लिये बन्दूक खडे।
घर घर हैं रूप बनाये कारागारो के।।

सड रही लाश काने मे
पडी अहिसा की
है वक्त नही
वायवी उडाने भरने का
जब लहू थूकती ऋतु हा
बलि की वेदी पर
सघर्ष ठीक पथ हाता
पार उतरने का।

है सुलग रहा
हर आगन का कोना-कोना
कर्तव्य मृतक हैं टीलो पर अधिकारो के।।



सियाराम मिश्र

मेरे लोहर बढैया

जब तुम चाहो
मुझे गरम लोहे सा पीटो
मेरे लोहर बढैया।।

मैं बढकर सामान जुटाऊँ
मस्त बनो तुम खा कर।
घुमा घुमा घॉघरा बढाऊँ
मैं जीवन की चादर।

जब तुम चाहो
पीकर मुझे शराब घसीटो
मेरे लोहरबढैया।।

मॉ बन कर शिशुओ को पालूँ,
एक लढी के नीचे।
पूरी सडक निहारे मुझको,
सुख तक ऑखे मीचे।

जब तुम चाहो
रक बनाओ या फिर टीटो
मेरे लोहरबढैया।।

रह रह मारूँ घान फिर भी हूँ,
मैं कितनी घनचक्कर।
सडी हुयी दृढता की ऐठन,
जर्जर रीति उटक्कर।

जब तुम चाहो
क्रोध भरे मुझको कमसीटो,
मेरेलोहरबढैया।।

**

जगली जटाये

बरगद की बूढी हें
जगली जटाये।।

युग युग स मोसम क
सह रहा थपेडे।

फिर भी अवशेषित हैं
किसलयी अदाये।।

एक डाल सूखी
तो दूसरी हरी हुयी।
दिन प्रतिदिन आभा
कुछ लगती निखरी हुया।

थके विहग दिन भर के
नीद मधुर पाये।।

उलझ गयी शिशुओ की
कुछ यहॉ पतगे हैं।
हो चुकी अनेक
इसी छाया मे जगे हैं।

खग पशु नर सब ने की
बहुत हैं सभाये।।

सब गुलाब बाहर के
नागफनी लगते हैं
देख इसे सपनो को
त्याग सभी जगत हैं

उग उग कर अर्पित की
सूरज ने सन्ध्याये।।



सियाराम मिश्र

मेरे लोहर बढ़ैया

जब तुम चाहो
मुझे गरम लोहे सा पीटो
मेरे लोहर बढैया।।

मैं बढकर सामान जुटाऊँ
मस्त बनो तुम खा कर।
घुमा घुमा घॉघरा बढाऊँ
मैं जीवन की चादर।

जब तुम चाहो
पीकर मुझे शराब घसीटो
मेरे लोहरबढैया।।

मॉ बन कर शिशुओ को पालूँ,
एक लढी के नीचे।
पूरी सडक निहारे मुझको,
सुख तक ऑखे मीचे।

जब तुम चाहो
रक बनाओ या फिर टीटो
मेरे लोहरबढैया।।

रह रह मारूँ घन फिर भी हूँ,
मैं कितनी घनचक्कर।
सडी हुयी दृढता की ऐठन,
जर्जर रीति उटक्कर।

जब तुम चाहो
क्रोध भरे मुझको कमसीटो,
मेरेलोहरबढैया।।

✯✯

जगली जटाये

बरगद की बूढी हैं
जगली जटाये।।

युग युग स मोसम क
सह रहा थपडे।

फिर भी अवशेषित हैं
किसलयी अदाये।।

एक डाल सूखी
तो दूसरी हरी हुयी।
दिन प्रतिदिन आभा
कुछ लगती निखरी हुयी।

थके विहग दिन भर के
नीद मधुर पाये।।

उलझ गया शिशुओ की
कुछ यहाँ पतगे हैं।
हो चुकी अनेक
इसी छाया मे जगे हैं।

खग पशु नर सब ने की
बहुत हैं सभाये।।

सब गुलाब बाहर के
नागफनी लगते हैं
देख इसे सपनो को
त्याग सभी जगत हैं

उग उग कर अर्पित की
सूरज ने सन्ध्याये।।



अतीत की यादो के गट्ठर

केवल अतीत की
यादों के गट्ठर
सब लोक गीत बचपन के गॉवो के।।

धीरे-धीरे कट गये पेड सारे,
बह गयी शून्य मे अचल की ताने।
इस कदर मरुस्थल पनपा धरती मे,
खो गये चले थे जो जीवन पाने।

सामने फैलती
भूख रही इतनी
पथ में उलझे हैं वैभव पावों के।।

हर छाया वाला वृक्ष बना लुगदी,
हो गया देश का प्रेम स्वार्थ घर का।
सरका कर अपने आगे के कॉटे,
आजीवन गडता कवच लिया कर का।

पहचान कौंधती-
काले सागर की
हैं डूब गये ऋतु क्षण तक नावो के।

आतक भरे पौरुष के हाथ हुये
चलता खाकीपन का अनुशासन है।
हम अपने ही चेहरो से अलग हुये,
हर सन्यासी का जलता आसन है।

अब दर्प शेष है।
अपने होने का
कल कूडे में होगे पछतावो के।।

❀❀

तन्द्रिल बैठी गौरैया

ठिठुरी हुयी धूप मे
तन्द्रिल बैठी गौरैया
मना रही सक्रान्ति बीन कर खिचडी के दाने।।
सूरज जैसे एक नसडी
हा अफीम खाये।
या धोबी-रवि-
वस्त्र-धूप को बॉधे अकुलाये।
आग तापते भूली सखियॉ
सब ता ता थइया
सिकुडा बैठा रहा रात भर कुत्ता सिरहाने।।
दुबक रजाई मे न दृष्टि
प्रियतम को देख सकी।
नही धडकनो के प्रभाव का,
कर उल्लेख सकी।
व्याकुल है वसन्त की खातिर,
मन की कनकइया
ओस नहायी लता मारती पादप को ताने।।
सरवत शर वत हुआ।
चाय काफी के भाव बढे।
जब शिमला लखनऊ हो गया,
गिरि पर कौन चढे।
जाडा चबा गया-
हिजडो की अल्लड ये दइया
सुन्न उॅगलियॉ प्यार सजोती बुन ताने-बाने।।
होटल मे भट्ठी की गरमी,
शुभ वरदान हुयी।
बिल्ली बालक निर्धनता को
लगती नीद सुई।
पैसे से लाचार बने परहित में दीवाने।।

★★

 सियाराम मिश्र

मत भागो उस महानगर को

मत भागो उस महानगर को
रात दिवस जो भाग रहा है।।

बहुत बार की देखी परखी
अपनी यह छोटी बस्ती है।
प्रेम भरी हर दृष्टि यहाँ है,
खुली किताबो सी मस्ती है।

अपना गाँव लिये अपनापन
वाट जोहता जाग रहा है।।

निकल न पायेगे दो आँसू,
वहाँ तुम्हारे लिये किसी के।
धुँआ धुँआ यह जीवन होगा,
घुटन-चुभन वरदान इसी के।

धरती के इस कल्पवृक्ष से,
उगल फेन को नाग रहा है।।

गोपन की भाषा पढता है,
जहाँ अपरिचित मानव चेहरा।
बाँध रही काली रेखाये,
राजमार्ग मे अपना सेहरा।

इतना धुँधला मैला दर्पण
छिपा जहाँ हर दाग रहा है।।



 सियाराम मिश्र

कविता अब कौन सुने

है जगल ने भीड उगायी
भट्ठी उदर उदर की दहकी।
पल पल के सकल्प बदलत
सूरज की भी यात्रा बहकी।

अधर-अधर म्लान हुये
माथा अब कौन धुने
कविता अब कौन सुने।।

मुख की खोहो मे गैंडा है
उर न पाले हैं पहाड से।
कोयल है बैठी मन मारे,
असमय सिहो की दहाड से।

घर घर मे आग लगी
फूलो का कौन चुने
कविता अब कौन सुने।।

हुयी कलकित पेहरदारी
हत्या स अभिशापित हो कर।
कूलो के नव सकतो पर,
धार बही विस्थापित होकर।

तट क जर्जर बूढे पादप
उलझन अब कौन बुन,
कविता अब कौन सुने।।



तू असीम है मनुष्य असीम है

सिन्धु मे घुसा तो थाह पा के तू रहा,
व्योम मे चला तो राह पाके तू रहा।
शब्द मे समा के ब्रह्म बन गया कभी
वाहनो मे है प्रवाह पा के तू रहा।
तू शरद समान और तू ही नीम है
तू असीम है मनुष्य तू असीम है।

उन्नयन हुआ बना असीम तू वहाँ,
यदि नमन हुआ बना असीम तू वहाँ।
कॉपने लगे पडे जो शेष सामने
यदि हवन हुआ बना असीम तू वहाँ।
धर्म है कही जो कही तू अफीम है,
तू असीम है मनुष्य तू असीम है।।

मक्खियॉ बढी अगर तू सुस्त हो गया,
विश्व जग गया अगर तू चुस्त हो गया।
दी पुलक सदा है मात्र तेरे प्राण ने,
तू खडा हुआ तो सब दुरूस्त हो गया।
तू ही कर्ण द्रोण और तू ही भीम है,
तू असीम है मनुष्य तू असीम है।।

प्रेम की गली मे तू ने राम पा लिया,
कामना हुयी तो मुक्ति धाम पा लिया।
कुछ भी है नही जिसे न कर सका है तू,
पथ मे रहा मगर विराम पा लिया।
तू ही ब्रह्म, तू हो जीव तू रहीम है,
तू असीम है मनुष्य तू असीम है।।

है अमन्द तू ही फूल की भी गन्ध से,
धन्य तू कभी है प्रेम के प्रबन्ध से।
तेज तेरी चाल मन की चाल से भी है,
तू करुण है वाल्मीकि के भी छन्द से।

 सियाराम मिश्र

रोग भोग तू ही और तू हकीम है
तू असीम है मनुष्य तू असीम है।

वक्ष पर कलो का बोझ तू ही उठाये
तू ही बम बना के नव्य ध्वस रचाये।
तू ही पूज्य तू ही दीन तू महन्त है
तू ही है डकैत और तू ही सन्त हैं।

सूक्ष्म तू पवन समान तू जसीम है,
तू असीम है मनुष्य तू असीम है।।

खम्भ फाड तू ने ईश को प्रकट किया
भीष्म बन के काल जीत जिन्दगी जिया।
देह प्राण राज्य सर्व दान कर दिया,
शीश दे के देश मे विहान कर दिया।

तू ही बुद्ध राम और तू करीम है,
तू असीम है मनुष्य तू असीम है।।

कृष्ण बन वनों में तू ही गाय चराता।
गोपियों के साथ तू ही रास रचाता।
स्वर्ग से उतार गग तू ही ला सका,
तू ही समागान भक्ति गीत गा सका।

तू ही है कुबेर और तू यतीम है
तू असीम है मनुष्य तू असीम है।।



भारत के पति हो

भारत के पति हो
नारी का मान बढाये रहना।।
तुम हो तपती धूप अगर तो,
प्रिया धनी है छाया।
प्रकृति अगर है प्रिया
पुरुष की तुम विराट हो काया।
सरस पन्थ हो तुम गगा को-
शीश चढाये रहना।।
दोनो कूल तभी सार्थक हैं,
जब मिलती है धारा।
सागर तो होता है केवल,
किसी नदी की कारा।
मधुर समायोजन से
जीवन स्वर्ण गढाये रहना।।
एक डाल पर खिले फूल दो,
नौका मे दो प्राणी
नर-नारी के मधुर मिलन से
सृष्टि बनी कल्याणी।
चादर मे अपनी समता की
बेल कढाये रहना।।
मिल कर शब्द सदा बोना तुम
निशि दिन सूनेपन मे
सत्य अमृत मिलता है सबको
रूप नाम मन्थन मे।
जो खग दे सन्देश प्यार का।
चोच मढाये रहना।।

देखा तुमको

देखा तुमको उस छप्पर के नीचे है
जहॉ हवा का हर झोका बेमानी है।।

तुम्हे देख कर बाली वाले,
पौधे शीश झुकाते हैं।
यह अरहर के खेत तुम्हारे
यौवन का उकसाते हैं।

आग तुम्हारे भीतर ऑखे मीचे है
गीत हृदय का बना नॉद की सानी है।

श्रम क चरण पखार
तुम्हारा अग जग जैसे भूला है।
मस्ती का खग द्वार तुम्हार,
रहता आग बबूला है।

चिन्ताओ का मरुथल तुक को खीचे है,
मरती तुमको देख कला की नानी है।

लदी कर्ज से दखी तुमने,
घर की सदा खोपडी है।
एक बॉस मजबूत खोजती,
रहती सदा झोपडी है।

खारा सिन्धु तुम्हारे ऑगन जाने कौन उलीचे है
उम्र तुम्हारी ऑसू की पटरानी है।

होंगे सपने सुख सुविधायें
प्रियतम की मीठी बातें।।
मजदूरी के तारतम्य मे,
कहॉ कल्पना सौगाते

भाग्य बीनता लकडी रहता दिन भर बाग बगीचे है
समता की हर झूठी हुयी कहानी है।।

★★

धूप करे हस्ताक्षर

सियाराम मिश्र

एक दिवस पहले जो शोभा,
घर की है मेरे।
वही वक्त की चुभन पाल कर
अपना मुँह फेरे।

जान समझ कर जग ने
फिर-फिर है धोखा खाया
सत्य स्वय बन सपना आया

शाखामृग को सीख खगो की,
विश्व दिया करता।
ठिठुरन जीता एक,
दूसरा नाश जिया करता।

किया सदा कुछ और
किन्तु है गया और गाया
फिर फिर जग ने धोखा खाया।।



सियाराम मिश्र

मैने दिन भर ध्यान लगाया

घाव भरे कुछ जो थे गहरे
सुधि की धूप न पल भर ठहरे।
टूट न जाये मिलन तार यह
साध साध स्वर थक थक गाया।
मैंने दिन भर ध्यान लगाया।।

तनिक उम्र का बॉस कट गया
मन की रस्सी और बट गया।
बहुत सफाई की फिर भी तो,
अस्त हुआ रवि धूल नहाया।
मैंने दिन भर ध्यान लगाया।

फिसलन का साम्राज्य अजाना,
जो विवक की रच न माना।
बन कर बिका हुआ सौदा सा
अपने से बन गया पराया।
मैंने दिन भर ध्यान लगाया।।

लडता रहा महाभारत मैं,
जिया सदा आगामि विगत मैं।
सॉझ हुयी ता स्लेट न दिखती,
क्या लिख दूॅ क्या खोया पाया।
मैंने दिन भर ध्यान लगाया।।

अपनी कुछ औकात न जानी।
बना दर्प की एक कहानी।
शब्द पवनसुत उडा गगन तक
किन्तु नही सीता तक आया।
मैंने दिन भर ध्यान लगाया।।

★★

सियाराम मिश्र

सब चौराहे एक तरह के

सब चौराहे एक तरह के
मुझको लगते हैं
चारो ओर मार्ग हैं जिन पर,
सजी दुकाने हैं
ग्राहक हैं विक्रेता भी हैं,
ताने बाने हैं।

एक तरह के मोल भाव सब
मुझको लगते हैं
थकन बटोरे सूरज ढलता
सबकी आहो मे
कभी न सिमटी उर की दूरी,
मन की बाहो मे।

अपने अपने घाव लिये सब,
मुझको लगते हैं।।
वही भीड हो हल्ला
अनुदिन वही तमाशा है।
शका सबको लुट जाने की,
व्याप्त दुराशा है।

सहते सब पछताव एक से,
मुझको लगते हैं।
सब ज्ञानी है किन्तु,
समय का ज्ञान नही रखते।
कितने हैं असहाय,
रच अनुमान नही रखते।

पिटते खाते दॉव एक से,
मुझको लगते हैं।।

✻✻

अगर थके हो चलते-चलते

अगर थके हो चलते-चलते
उठते गिरते और सम्हलते
तो इस शाश्वत नन्दन वन मे
तुम आ जाओ।
तुम आ जाओ

थी गुलाब की सुन्दर क्यारी,
काँटे चुभे फूल मुसकाये।
करुणा और क्रूरता लेकिन,
जडता मे तुम समझ न पाये।
रहे निराशा के मरुथल मे
घातों के बीहड जगल में
तृप्ति मिलेगी अब इस घन मे
तुम आ जाओ तुम आ जाओ।।

जब जब देखा सुन्दर झरना,
तो जाना पर्वत से निकला।
यह रहस्य तुम जान न पाये,
है सागर की आशा विकला
ऑखे देखी मोर पख में
थके मधुर स्वर खोज शख मे
मिला न कुछ शब्दो के तन में
तुम आ जाओ, तुम आ जाओ।।

घडा प्रेम का बचा न पाये,
ताजमहल तुमने बनवाये।
जाने कितने चाँद सदृश मुख
तुमने हाथो से दफनाये
बिंदिया, मेहदी और महावर,
हीरा मोती और जवाहर,
डाले रहे तुम्हे बन्धन मे
अगर रक्त को पढ डाला हो
अपना दीपक गढ डाला हो
आन मिलो उन्मुक्त गगन में
तुम आ जाओ,
तुम आ जाओ।।

एक पेड नीम का

एक पेड नीम का
रूप ज्यो हकीम का

रह रह कर बकरी के
बच्चो की डुम्मियॉ।

ताबे की एक डेग
काम काज जोग नेग।
छप्पर हैं रखवाले,
मौसम देखे भाले।

पल पल पर बीबी जी
कहती है ओ मियॉ।।

सबसे प्रिय पानदान।
निभा रहा खानदान।
गारे की दीवाले,
उखड उखड पडती हैं खूँटियॉ।।
कभी कभी सोरवा,
कभी-कभी चटनी से।
कपडे कुछ ठेलो से,
क्रय होते छटनी से।
सहते बाजार पर चन्द की बपौतियॉ।।

घास फूस की दवा,
शीतल जल या हवा।
बेमतलब बुढिया का,
कौन सहे मर्तवा।

श्रम को हैं भाग्य की चुनौतियाँ।।

ईद-ईद हौसले,
शेष दिन अतिथि खले।
पीर या मजार की-
जोर दे मनौतियाँ।



सियाराम मिश्र

सोचता हूँ आज।

तम पर्वत नही है वह
खाद पाना हो जिसे
बिल्कुल असभव।

साचता हूँ आज
बहरापन नही नि सीम
जान पायेगा नही-
जा शब्द उद्भव।।

साचता हूँ आज
रथ का चल रहा-
पहिया निरन्तर
प्राप्त करके ही रहेगा
पार्थ अजगव।।

साचता हूँ आज
तन है शब्द का ही पीन अविरल
मूल मे जिसक सदा
नि शेष है रव।।

साचता हूँ आज
कारा सूर्य की केवल समय हे
साँझ का वरदान
निशि के बाद मे होती उषा नव।।

☆☆

हे अतन्द्रिल चिर सजग कवि।।

पाप युक्ता शर्बरी से दूर
गीत की गोदावरी से
सुप्ति की प्रति मुक्ति के पावन चरण से
प्राण के नि शब्द से भरपूर
हे अतन्द्रिल चिर सजग कवि।।
कर्म के अनुताप से उन्मुक्त
हो गगन तुम,
मेघ तुम मे लुप्त
छुअन की अनुभूति के-
तुम लिजलिजे क्षण भी नही हो
व्रण नही मन के
हे सतत दीपित अमर रवि।।
नवल अनुसधान के-
व्यामोह के औदास्य
पूजा प्रार्थना के अतल डूबे-
अप्रकाशित भाष्य,
पवि के मध्य मे बैठे अतल कवि।।
मौन के आकाश
तरलायित सरलता के मधुर विश्वास
उतरो फिर वरो
चैतन्य का
आनन्द का मधुमास
हे नियति की गन्ध से अव्याप्त
तट से हीन मेरे कवि।।



नौका खोलो प्रिय

जीवन की नौका खोलो प्रिय।
कलिका शतदल के रूप धरे
प्राणो की भाषा प्राण वरे।
छवि निखरे प्रसरित हो परिमल
दृग अचपल रागानुग अविरल।
इन्द्रियातीत मधु घोलो प्रिय।
जीवन की नौका खाला प्रिय।।
वारिद अलकावलि शशि मुख नव
तोडो अवगुठन, मानस रव।
पलको पर पल पल रच उत्सव
श्लथ हो न कभी वय का अजगव।
भव को निज सुख से तोलो प्रिय
जीवन की नौका खालो प्रिय।।
हे रस रगिनि कल पथ सगिनि
शोभा वलयित, हे तनिमा-खनि।
साधानासीन, बन चिर नवीन
मम अधर धरी स्वर युक्त बीन।
जय अमर प्रेम की बोलो प्रिय
जीवन की नौका खोलो प्रिय।।



स्वागत के मधुर गान।

ललक रहे बाहुपाश
तम का कन-कन उजास
प्राणो मे नव विहान।।

छलक उठा उर का घट
प्रेम हुआ अक्षय वट
परिमल मन मजु मान।।

अन्तर की गन्ध विकल
जगने हित छन्द विकल
मनसिज आवद्ध ज्ञान।।

सुरसरि सम उर्मिल तन
सुधि बुधि के चलित पवन
तनिमा मे देह-यान।।

महक रहे क्षितिज छोर
चहक रहे नयन कोर
स्वागत के मधुर गान।।

शतदल के रूप खुले
रवि-जल नव पात धुले
जीवन छवि प्रवहमान।।



सियाराम मिश्र

तू ही दीप जलाने वाला

करन का बदनाम खडे हैं
व सब मुझस बहुत बडे हैं।
तू ही बस अन्ध की लाठी
तू ही पार लगाने वाला।।

बन्द करूँ खिडकी दरवाज,
तो दीवाले ताड घुसेग।
कस कर डारी पकडे रथ की
अपने पथ पर मोड घुसेग।

तूफानो क वेग बहुत हैं
हलचल है उद्वेग बहुत हैं।
पग-पग कटे अँधेरे पथ पर-
तू ही दीप सजाने वाला।।

हर ऑसू सगीत बनेगा
अगर तनिक सबल दे दगा।
इस सागर के खारेपन को
मीठा गगाजल दे दगा।

ॲधियारे थक थक लडते हैं
कॉट टूट टूट गडते हैं।
सन्नाटो से भरी सभा मे
तू ही रग जमाने वाला।

वन्दनवार सजाया जब भी
जो जग ने माना कमजोरी।
नीर क्षीर का तर्क किया ता,
रूठा जगत कहा मुँहजोरी।

मार रही है दुनिया ताने,
मोल भाव की सजी दुकाने।
मेरे अधर-धरी वीणा पर
तू ही केवल गाने वाला।।

चतकव्वरी धुर गान।

चितकबरी धूप भी
डूब गयी तम क सागर मे गया।।
सूरज असहाय हा प्राणो मे नव विहान।।
पानी ऊपर सिर
जोर पडी इतनी
कौन कहे ढोल परिमल मन मजु मान।।
अम्मा ने कॉख कॉख भेजी दुहिता

लुगदी सी हो गयी मनसिज आवद्ध ज्ञान।।
शब्द जहॉ सुन्दर
ऐठ रहा बलिवेदी
मरुथल मे रक्त तनिमा मे देह-यान।।
वक्त की निहाई पर रक्खे सोने
चोट तू लोहार की बार-बार सह।
गीत सब धमार स्वागत के मधुर गान।।
मील की चिमनियो
नाविक जो खेता।
उससे सम्बन्धी सब जीवन छवि प्रवहमान।।
एक ओर मन कहता उसका भी

गुबरीले भौंरे हो गया।
थक थक कर कौन
ईंट लिये पागल जना।
कौन घुसे सर्पों से
कोयल कहती है अपनी जात से,
कौओ की हॉ मे हॉ करती रह

धूप कर हस्ताक्षर

सियाराम मिश्र

तू ही दीप जलाने वाला

करन का बदनाम खडे हैं
व सब मुझस बहुत बड हैं।
तू ही बस अन्ध की लाठी
तू ही पार लगाने वाला।।

बन्द करूँ खिडकी दरवाज
तो दीवाले तोड घुसेगे।
कस कर डोरी पकडे रथ की
अपने पथ पर माड घुसेगे।

तूफानो क वेग बहुत हैं
हलचल है उद्वेग बहुत हैं।
पग-पग कटे अँधेरे पथ पर-
तू ही दीप सजाने वाला।।

हर ऑसू सगीत बनगा
अगर तनिक सबल दे दगा।
इस सागर के खारपन को
मीठा गगाजल दे दगा।

अँधियारे थक थक लडते हैं
कॉट टूट टूट गडते हैं।
सन्नाटो से भरी सभा मे
तू ही रग जमाने वाला।

वन्दनवार सजाया जब भी
जो जग ने माना कमजोरी।
नीर क्षीर का तर्क किया ता
रूठा जगत कहा मुँहजोरी।

मार रही है दुनिया ताने
मोल भाव की सजी दुकाने।
मेरे अधर-धरी वीणा पर
तू ही केवल गाने वाला।।

★★

चतकबरी धूप भी-

चितकबरी धूप भी
डूब गयी तम क सागर मे गहरे।।
सूरज असहाय हो गया,
पानी ऊपर सिर से।
जोर पडी इतनी है थाप
कौन कहे ढोल बजे फिर से।
अम्मा ने कॉख कॉख भेजी दुहिता,
पत्थर के पहरे।।
लुगदी सी हो गयी किताब,
शब्द जहॉ सुन्दर थे कुछ लिखे।
ऐंठ रहा बलिवेदी पर पुलकित मेमना,
मरुथल मे रक्त कमल हैं दिखे।
वक्त की निहाई पर रक्खे सोने
चोट तू लोहार की बार-बार सह रे।।
गीत सब धमार के
मील की चिमनियो मे घुट रहे।
नाविक जो खेता है नाव
उससे सम्बन्धी सब छुट रहे।
एक ओर मन कहता उसका भी,
तैर नही बह रे।।
गुबरीले भौंरे हो गये अभेद
थक थक कर कौन करे छेद आसमान मे।
ईंट लिये पागल जब हैं खडे
कौन घुसे सर्पों से इस भरे मकान मे।
कोयल कहती है अपनी जात से
कौओ की हॉ मे हॉ करती रह रे।।

☆☆

सियाराम मिश्र

ओ बसन्त!

आ बसन्त मत करो प्रकम्पित
रह रह मन मेरा।

भूल चुका तितली सा उडना
अलि बन सुमन सुमन से जुडना।
व्योम बन गया है बॉहो का
यह बन्धन मरा।।
अश्व थके वल्गा बेमानी
जागा रथी स्वगति पहचानी।
फूल और कॉट अभेद हैं
कल स्यन्दन मरा।।
पथ और गन्तव्य एक से
गीत-चरण-मन्तव्य एक से
दिखता रूप अरूप जहॉ है-
वह दर्पन मरा।।
हूँ शिखराग्र अचल पर सुस्थिर
तमसाछन्न न हो आभा फिर।
तब था या अब है जग जाने-
पागलपन मेरा।।



सियाराम मिश्र

हे बसन्त तुम आओ !

है प्रतिकूल पवन नीरस उर
कम्पित है तन जग अति निष्ठुर।
अलस अचेतन कली भ्रमर सब
विश्ववर्ति उकसाओ।।

सहयात्री मरू, अतरू, अवनि है
क्या मृगजल ऋतु तनिमा खनि है
प्राणद छुअन भरो कल वपु मे
जीवन पथ सजाओ।।

विकसे यह अस्तित्व त्याग फिर
बने प्रणय अनुबन्ध नवल चिर
मेरे दृग निज इन्द्र धनुष पर
ओ धनश्याम टिकाओ।।

स्नेह तरल हो रेत राह की,
बने गीतिका मधुर चाह की।
पुष्प घटो को छवि कटि पर धर
सुरभित व्योम बनाओ।।



सियाराम मिश्र

आनन्द और है

लिखने चला था मत्र
शब्द खो गया कही।
होने चला था प्राण
मूर्ति हो गया कही।

ऑगन मे व्योम बाने का
आनन्द और है।।

जीवन है जागरण का नाम
और कुछ नही।
है धर्म आचरण का नाम
और कुछ नही।

मन प्रेम मे भिगान का-
आनन्द और है।।

बन बीज उगा-
वृक्ष मैं महान बन गया
टहनी मे व्रन्त बन के-
बना फूल तन गया

स्वच्छन्द गन्ध होने का,
आनन्द और हे।।

छाया के गॉव बैठ क,
समझा ये धूप है।
सूखी हुयी है घास
समय का ये सूप है।

पादप मे वन सजोने का-
आनन्द और है।।

ऑसू की लिपि बडी है
सविधान बडा है।
पिघली सी प्रार्थना का
स्वाभिमान बडा है।

मॉ से लिपट के रोने का
आनन्द और है।।

★★

मन मेरा

कार्यालय मे दबे-
प्रपत्रो सा है मन मेरा।

रह रह कर ममता की भाषा
दर्प कथा कहती।
फाइल लाल लोभ फीते से
सदा बधी रहती ।

कही न उजली मिली लिखावट-
पृष्ठ पृष्ठ हेरा।।

किसने क्या रिपोर्ट लिख दी है-
कागज कौन यहॉ।
जिससे पूछो उसका उत्तर
केवल मौन यहॉ।

बाइबिल के उस सर्प सदृश-
अभिशापो का घेरा।।

काले कॉटे से अक्षर जो
उनमे प्राण भरे।।
जितने काटे वाक्य अनय के
उतने और फरे।

जो कुछ शेष रहा उस पर भी
दीमक का डेरा।।

अधिकारी हैं ॲधियारे मे,
पागल भीड हुयी ।
कसक भरी जीवन वीणा की
है हर मीड हुयी।

काल धुये के साथ कर रहा
है पल-पल फेरा।।

☆☆

सियाराम मिश्र

वर दो स्वदेश की माटी का

वर दो स्वदेश की माटी का
कण कण शुभ कचन बन जाये।

हर क्षण न्योछावर हा अपना
इसकी सुन्दर परिपाटी पर।
बस देश भक्ति का शब्द लिखूँ
जीवन की कोरी पाटी पर।

जो स्वर निकले वह भारत का,
स्वागत अभिनन्दन बन जाये।

आकाश चूमता जो ध्वज है
वह करे विश्व की अगुआई।
चिर यौवन का सकल्प वर।
गतिशील रहे नव तरुणाई।

मानवता के अनुपम पथ का,
मेरा तन स्यन्दन बन जाये।।

छवियॉ हैं अलग-अलग लेकिन
बस एक प्राण की धार रहे।
हो फूल खिले चाहे जितन
निज धरती का आधार रहे।

बढकर हर दिव्य नियति दृग की,
उर उर का बन्धन बन जाये।।

प्रिय हिन्दी हो एकता सूत्र
सहचरी और भाषाऍ हो।
सबके सुख दुख से जुडने की
पल्लवित नित्य आशाये हो।

जो बलि पथी पर गर्व करे-
ऐसा जन गण मन बन जाये।।

★★

फागुन तुम आ गये।

मुखर एक गन्ध लिये
फागुन तुम आ गये।
सोच नही परिणति का
वर्तमान के रेले।
ठिठुरन के पल बीते
नवल स्वप्न खेले।
साथ देह-छन्द लिये,
फागुन तुम आ गये।।
सूरज ने मुख धोया,
नीर लगा पीने।
आमो के बौर लगे
कच्चापन जीने।
नूतन अनुबन्ध लिये,
फागुन तुम आ गये।।
नश्वर के सुख का-
सर्वोच्च शिखर बन आये।
अम्बर जिसमे डूबा,
ऐसे घन बन छाये।
प्राणद मकरन्द लिये
फागुन तुम आ गये।।
व्याकुल सन्यासीपन,
सयम की छत तोडे।
है रथी उदास-
बेलगाम हो गये घोडे।
भव के कल फन्द लिये-
फागुन तुम आ गये।।
चौरस्ता यादों मे,
मिलन पर्व पलको मे।
सौरभ रस रूप भरे
डूबा मन अलको मे।
फूटता रिहन्द लिये,
फागुन तुम आ गये।।



सियाराम मिश्र

हो न सका प्राण तुम्हारा।

हा न सका मैं प्राण तुम्हारा
आकुल अन्तर स्वर उन्मन है।।

पाषित करते नित्य अहम् का
सॉझ आ गयी घारे-धीरे।
मरुथल मे दखा जीवन का
आ न सका मैं रस सरि-तीरे।

पॉव कही के कही पडे हैं-
काम न आया अभिनन्दन है।।

दृग ऑजे अपना मुख धोया,
उसमे भी अहसान जताया।
रहा सवालो के जगल मे
उम्र काट दी समझ न पाया।

सर्जन किया ध्वस कर डाला
जिया अभी तक पागलपन है।।

घुट कर जिस पादप के नीच
हैं अभाव के नगर बसाय।
सुधि के तहखाने के ऊपर
एक रहा आवरण बिछाये।

जान न पाया लहर लहर मे
उछल रहा सागर का मन है।।

सगति आग और लोहे की
जिसने भ्रम का व्योम बनाया।
अक्षर शब्द वाक्य से रच कर-
जीवन का अखबार सजाया।

सरल तरल आकर्षक सुन्दर-
खिल न सका अब तक बचपन है।

धूप ने उतार दिये है कपडे

धूप न उतार दिये हैं कपडे
बिखर गयी बैठकी अलाव की।।

खेतो ने पीली चूनर ओढी,
टहनी की सास तनिक गरमायी।
ढीले कर जारबन्द गन्ध ने
कस्तूरी जीवन की महकायी।

सिसकी कुछ भूख की थमी घटी
सुस्त हुयी किरकिरी तनाव की।।

न्यून हुआ गीलापन ऑगन का
दुबक गये कोनो मे ॲधियारे।
हवा लिये छुअनो का है तेवर
मौसम की छेड लिये गलियारे।

देख देख फागुन के रूप की अदा,
चर्चा है मन के बहलाव की।।

दो तट जो आतप के और शीत के
उन पर पुल बॉध दिया राम ने।
सॉझ प्रात के नये क्षितिज लिये
सतुलन जिया दिन के काम ने।

सास सास मजु स्वर हुयी
ठहर गयी इच्छा बदलाव की।।

☆☆

उमडे घुमडे बादल लेकिन

उमडे घुमडे बादल लेकिन,
बरस न पाय बरस न पाये।।

कहत थ जीवन भर देग
धरती की सब तृषा हरग।
बैठेगे इतिहास वक्ष पर
अब तक की हर मृषा हरग।

शूलो ने शब्दो के पथ मे
रह रह कर रोडे अटकाये।।

कुछ घा थे खा गय गुफा मे
कुछ बस इन्द्र धनुष तक आय।
कुछ थे बन पहाड धुएँ क
कुछ बस करुणा जल भर लाय।

चॉद उगा तो रक्त नहाया
सूरज भय आतक सजाये।।

कुछ पथी तो अन्धकार मे
एक अपरिचय जी कर भागे।
कुछ के सपनो मे विधि के सब
लख सुनहले मधुमय जागे।

मन की भू पर उगी प्यास को,
कौन बुझाये कौन दबाये।।



 सियाराम मिश्र

वीणा पाणि अज्ञ मै इतना

वीणा पाणि अज्ञ मैं इतना
क्या मॉगू कुछ ज्ञान नही है।

पल भर पहले एक वस्तु को
चाहा वह भी अरस हो गयी।
जिसको सोना था वह जागी
जगना जिसको विकल सो गयी।

इतने प्रश्न खडे हैं सम्मुख,
उत्तर कुछ आसान नही है।

जहॉ शब्द को पॉव मिले हैं,
वही झूठ के गिरि बनते हैं।
इसी तरह मकडी के जाले,
नित्य बसेरो मे तनते हैं।

किसी पथ पर अथ या इति का,
होता कुछ अहसान नही है।।

पादप अगर एक मैं मार्नूं-
डाल-डाल को अलग किया क्यो।
अगर मान लूॅं दिन को गहना,
तो रजनी को विश्व जिया क्यो।

सागर सगम मे सरिता के-
जीवन की पहचान नही है।।

☆☆

सारा जग नाटक बन आया

अपनी छाया स पादप न
जब अपन का अलग किया ता
सारा जग नाटक बन आया।।

सम्बन्धो की भाख मॉगता
जब तक द्वार द्वार टकराया।
मिला गिरा का कवल गहना
अनुदिन पानी गया चढाया

गीतो स कवि न अपन को
जब ऋतुक्षण मे अलग किया तो।
एक बिन्दु मे सिन्धु समाया।।

घुटनो क बल एक हाथ म
जब शिशु ने चाबा पकडाइ
बॉहो मे भर तभा पिता न
शुभ आशिष का झडी लगाइ।

मीठी छुअनो स शरीर का
जब मन न था अलग किया ता
चुप का नीड शब्द न पाया।।

जो अपना था उस न जाना
बुने सदा सतरगी सपने।
अनदखी की ज्योति दिय की
देख माने सुख दुख अपने।

सम्पादक ने समाचार से
जब अपने को अलग किया तो
हर विचार ने तमस जगाया।।



सियाराम मिश्र

वीणा पाणि अज्ञ मै इतना

वीणा पाणि अज्ञ मैं इतना
क्या मॉगू कुछ ज्ञान नही है।

पल भर पहले एक वस्तु को
चाहा वह भी अरस हो गयी।
जिसको सोना था वह जागी
जगना जिसको विकल सो गयी।

इतने प्रश्न खडे हैं सम्मुख,
उत्तर कुछ आसान नही है।

जहॉ शब्द को पॉव मिले हैं,
वही झूठ के गिरि बनते हैं।
इसी तरह मकडी के जाले,
नित्य बसेरो मे तनते हैं।

किसी पथ पर अथ या इति का,
होता कुछ अहसान नही है।।

पादप अगर एक मैं मानूॅ-
डाल-डाल को अलग किया क्यो।
अगर मान लूॅ दिन को गहना
तो रजनी को विश्व जिया क्यो।

सागर सगम मे सरिता के-
जीवन की पहचान नही है।।



सारा जग नाटक बन आया

अपना छाया स पादप न
जब अपन का अलग किया तो
सारा जग नाटक बन आया।।

सम्बन्धो की भाख मॉगता
जब तक द्वार द्वार टकराया।
मिला गिरा का कवल गहना
अनुदिन पाना गया चढाया

गीतो स कवि ने अपने को
जब ऋतुक्षण मे अलग किया तो।
एक बिन्दु मे सिन्धु समाया।।

घुटना क बल एक हाथ म
जब शिशु न चाबा पकडाइ
बॉहो मे भर तभी पिता न
शुभ आशिष की झडा लगाइ।

मीठी छुअनो स शरीर का
जब मन न था अलग किया ता
चुप का नीड शब्द ने पाया।।

जो अपना था उस न जाना
बुने सदा सतरगी सपने।
अनदेखी की ज्योति दिय की
देख माने सुख दुख अपने।

सम्पादक ने समाचार से
जब अपने को अलग किया तो
हर विचार ने तमस जगाया।।



ओ मॉ!

निरन्तर सुनता हूँ पदचाप
थके मादे आने जाने वाले यात्रियो की
कब कह सकूँगा जूतो से
आवश्यकता नही है तुम्हारी
भला हूँ नगा ही।
कब तय होगा-
गर्मी मे कुत्ते की निकली हुयी हॉफती जीभ सा-
नीरस यह जीवन का मार्ग।

तुम्हारी क्रीडाओ म
यह बालक तुम्हे देता है मोद।
तुम भूल गयी हो
कठ हृदय और शब्द देकर,
तुमने मास के लोथडे से बनाया मनुष
गाया तुम्हे हमने कवि बन कर,
उगाये तुमने ज्वालामुखी,
हमने अणुबम ।
बन गया मे शस्त्रो से लदा
एक पादप।

दिया वही
हमने जो पाया
चिन्ता है एक
कब बनोगी तुम पुन एक मॉ
और मैं एक शिशु।



जगली मृत्यु

कुछ लोग
मार रहे थे निरीह जन्तुओ को
हो रहा था सरकारी सिक्को
और जगली मृत्यु का विनिमय।

बिना चट्टानी धारदार प्रतिशाध के
सहते जा रहे थे यातनाऍं
अबोले जन्तु।
मन से हारे हुये लोग
नही बन्द करा सकते यह गिद्ध भाज।
लगता है
कुर्सी की रक्षा के लिये
आवश्यक है, हत्याओ तथा अफवाहो का कवच।

किन्तु ओ गौरैया।
खडा है जबडा फैलाये
जहॉ क्रूरता का इतिहास
वही रहना तुम्हे प्रिय है आज भी।
थकी नही हो तुम आशा करते
बुला ही लेगा मनुष्य वापस-
अपनी खोयी हुयी पहचान।
प्रेम का हलफनामा है,
तुम्हारा निडर होकर फुदकना।

एक सहज कार्यवाही है तुम्हारा व्यवहार
पत्थर होने के विरोध मे।
फिर जीना कर दिया है प्रारम्भ
ऍंधेरा कीचड और मास के
सोच मे मनुष्य ने।।



जब तोडता हूँ फूल तुम्हे।

लगता है
भग कर रहा हूँ किसी सच्चे पुजारी की पूजा
जब तोडता हूँ तुम्हे।
स्वार्थी हूँ कितना
मिटा रहा हूँ जैसे एक समाधि लेख
भिखारी भी नही बन सका हूँ
तुम्हारी सहज मुस्कान का।

लुटेरा बनना हो गयी है
मेरी नियति पर्त दर पर्त।
पुजारी बनना–
दूसरे की आराधना मे डाल कर विघ्न
स्वार्थ की अन्धी पहाडी के द्वारा
दबोचा जाना ही तो है।
तुम्हारा यह अबोला समर्पण
जैसे सूर्य की किरणे
हो जाती है समर्पित समुद्र मे
रात्रि के बिहार के लिये।

विज्ञापन नही है तुम्हारी पूजा।
आरती भी नही है
अनुबन्धित स्वरो की।
सूरज की यात्रा
और बछडे को चाटती–
गाय की मानसिकता है तुम्हारी पूजा।।

न तो दहाडती भूख है तुम्हार पास
काला तर्क लिय हुय।
खतरनाक सभावना का
दलदली कुऑ भी नहा हे
तुम्हारे आग।
शायद तुम जानत हा
जन्म लेता है हर महाभारत
धृतराष्ट्र के अन्धपन से।
इसीलिये बिना शर्त
सेवा की फुलवाडी मे
खिलते और बोलते हा
सुगन्धित पुष्प।

☆☆

अवकाश प्राप्त हूँ

दृष्टिगत है लैम्पपोस्ट
पर्यवसान के क्षणो मे टिमटिमाता।
ओढ कर पतझड की उदासी,
सूख रहे हैं अधरोष्ठ।
वस्त्रो की धीरे-धीरे भीगती
अब डूबी तब डूबी गठरी सा मन
कटे हुये खेत सा ससार,
अनुभव फसल की लॉक उठ जाने का।
झाड पोछ कर रख दी गयी
पुस्तको सा स्थायित्व
परीक्षा समाप्त होने पर।

अर्थ नही अधिक रखते हैं अब
सूरज की प्रथम किरण,
गगा का उद्‌गम,
इन्द्र धनुषी आकाश,
खजन की ऑख
शिकार हूँ मैं-
अपरिहार्य परिवर्तन का
खाकीपन शेष है मन मे एक-1

मृगमरीचिका लगता है
जीवन के प्याले को
बूँद बूँद पीने का आदर्श ।
कागज के विराट जगल मे
एक छोटी फाइल जैसा है मान्सल सम्बन्ध,

हे प्रभु ।
प्रदान करो मुझे ऑख
जो अनगढ पत्थर से
निकाल सके कुछ आर्द्रता बाहर

★★

 सियाराम मिश्र

चिकना घडा

भरे हुए कडवी शराब
अपने उदर मे
जैसे कोई निथरा बिम्ब लिये नरक का
उतरे यमदूत
दर्प की सबसे बडी
हथौडा से बनी कुर्सी पर
रख दिया गया है
स्वार्थ का इस्पाती चश्मा जडकर।

कुभकार ने सृजनात्मक ठोक में
शोषण की कट्टरता प्रदान की है इसे।
इसकी खाल मे
आदमी नही
छुरा लिये बन्द है एक सिद्ध कसाई
अट्टहास करता हुआ
हिटलरी मानसिकता के साथ।
ओजस्वी बकवास हैं
इसके लिये छोटी-मोटी
न्यायोचित मॉगो की पहाडियॉ

किसी की गिडगिडाहट
शालीन और विवशतायुक्त तर्क की कतरने
धारदार चीखे
अप्रभावी है पूरी तरह
इसकी वाटरप्रूफ मोटी पर्त पर।
जला सकता है यह पूरा शहर
जबकि तूफानी आपत्ति होती है इसे
एक गरीब मजदूर की,
टिमटिमाती मोमबत्ती पर।

बागी झुके द्वारपाल से
सहमे खडे रहते है कुछ अधिकारा

और छोट भइया नेता इनके सामने
आकर्षित करते हैं इसे
कभी-कभी सहस्रदली अधर
लेकिन इनकी नियति
मसला जाना ही है
खूनी तथा कामान्ध पजो से।
मालिक की दृष्टि
इसके राक्षसी कृत्यो पर नही
वह तो
ऑख देखता है
मुनाफा रूपी मछली की
कलयुगी अर्जुन बनकर।
यह किसी की
आत्मदाही तमतमायी आवाज को
सोख लेता है-
गेट पर रक्खे ब्लाटिग पेपर से
और दे देता है
पॉवो के नीचे की रोटीहीन जमीन
''यह इसलिये बडा है
क्योकि यह चिकना घडा है।''

☆☆

 सियाराम मिश्र

बाप हूँ भागे हुये बच्चे का

आकुलता
जालबद्ध मरणान्मुख मछली के समान
असमर्थ प्राप्त करने मे
दशरथ से मरण को
एक उधेडबुन, एक कचोट
साहस का ज्वार फिसलन से भरा
दृष्टिगत धुँधलके मे
हो जाता है हर बालक
टूटे कॉच सा।
गड रहे हैं सपने शिराओ मे
करुणा की बेलि
पश्चाताप के फूलो से लदी
चढ रही है अधजले वृक्ष पर
जल पाती है कभी-कभी
आशा की मोमबत्ती कुछ इस तरह
तुतलाती हुयी ज्योतिष और सन्तो की वाणी,
पढ रही है पहाडा।
कुत्ते के सिर के अदृष्ट घाव सा स्मरण
लेने देता नही है चैन।
अभिशाप है मेरी उपस्थिति
प्रसन्नता स्नात प्रत्येक व्यक्ति के लिये
पाप है तोता जैसा
दृश्य के पीजडे मे बन्द।
व्यापारी सगीत का आलाप हूँ
भागे हुए बच्चे का बाप हूँ।
मौन तथा ऑसुओं की भेंट लिये
दुखद झूले पर बैठा
जीवन और मृत्यु के।
सृजन-रुग्ण गवाक्ष से

धूप करे हस्ताक्षर

सियाराम मिश्र

टिका हूँ-
तुम्हारी प्रतीक्षा के।
तलाश मे निश्चयात्मिका बुद्धि की
ललक है पुत्र के शव दर्शन की
झलक है उदास दूर कही समुद्र मे
सन्ध्या सूर्य के डूबने की।
बिखरी अलके
बोझिल पलके
जग से विजयी निज से पराजित,
परिताप हूँ
दानाहीन फलियो का।
मूर्खों की सूची मे है
मेरा नाम,
क्योकि सहारा लेकर
दुर्बलता का
नही बन पा रहा हूँ अर्जुन,
जिसे कृष्ण ने सुनायी थी गीता
परमात्मा पर विश्वास को किनारा देकर
हृदय के आकाश पर
खून की नदी के प्रतिबिम्ब सा।

**

उम्र की ढलान पर

पीठ पर लादे
एक ऊबड खाबड दलाव,
खडी होकर
उम्र की पथी जमीन पर,
पत्नी बोली
हे पति देव।
कितना अच्छा पालतू गुलाब है?
याद आया पति को लाल-लाल टमाटर
श्रेयस्कर रहगा सलाद के लिये।
कभी तो छूते ही लाल शब्द को
याद आते थे गुलाबी गाल
अब समय के खुरदुरे अनसुनी करते सूप ने
बना दिया है जीवन को।
एक चिटका ताल
चुम्बकीय वासना की गन्ध मिली थी
पहले मिलनेच्छा मे
सभी भरते थे पानी
नीद रात और जवानी
होता था बात का प्रारम्भ
नानी की कहानी सा नही
नही किसी लम्बी कविता सा
मात्र सकेत थे-
शब्दो से बडे रोटी से बेखबर।
मूल्य सूची पढता हूँ आज
प्रात से साय तक
सलीब पर चढता हूँ फरमाइश की।
चढता हुआ सूर्य
और उतरता हुआ मैं,
शेष है बीच में

धूप करे हस्ताक्षर सियाराम मिश्र

आवश्यक आवश्यकता पर रुग्ण बहस।
स्पर्श मे होता था रोमाच
बनती थी श्रृगार
भोर की किरण
खॉस खॉस कर
चिलम पीता हुआ आज उत्तरदायित्व की।
रोटी सेकता हूँ
सूर्य के रूप मे उगती
मॅहगाई की पहाडी पर
पीसने के लिये बहुमूल्य क्षण।
अजानी अपरिहार्य चक्की में भविष्य की।
पहुॅच गयी है-
पीठ पर-
पॉवो के नीचे की धरती।
गिरकर अॅधेरे कुऍ मे
बुदबुदा रही है एक धुमैली जिजीविषा,
याद नही आते हैं उरोज और-
कमल नयन -
आज नारगी तथा रक्त कमल देखकर।
होते हैं सामने
बच्चो के पीले मुख
गड्ढो मे धॅसे नेत्र
पत्थर के रूखे पहाड सा
अडा है सामने
बाजार घर और कार्यालय का त्रिकोण।

☆☆

आ गया है कलेन्डर

कलन्डर आ गया है
करने यह इगित
कि धरता की चक्की की कील पर
रग कर काट दिया है
समय क धुन न एक वर्ष।
घाषणा करन
उतार दा मौसमी टोपी की तरह
दीवारो से
पुराने कलन्डरो का।
वर्ष के चूहे न
उम्र क घर मे
और गहरा बना दिया है बिल।
उतार दी है केचुल
काल सप ने एक साल पुराना
मोर्चा झेलने नय युद्ध का,
गाडी मे बेठ
विदा हात साथी की तरह रूमाल हिला-हिला कर
चला गया हे पुराना वर्ष।
धीर-धीर
देकर नदी का एक भँवर
जीवन की चादर मे
नये बूटे काढन
और लिखने आज नकद कल उधार।
स्वप्न मे हिलत हाथ
साझ की पायल के चुप हान का
सकेत लिय
आ गया हे कलेन्डर।

★★

सियाराम मिश्र

टुकड़े-टुकड़े छत

बन गया है आकाश।
टुकडे-टुकडे छत
नही लिखी जा सकती बोर्ड व्यवस्थित कविता भी
विषय बनाकर इन छतो को।
उग रहा है आकाश
छोटे कमरे मे
जहॉ भीड के लिये नही है कोई छत
ज्वार-भाटा है सॉसो का
एक बुना हुआ सन्नाटा है बस
टपक रहा है दराजो से
रिस रिस कर पानी
सुझाया था किसी ने
डाल दो सभी कमरो के लिटर एक साथ
बचाना कठिन होगा
अपना अपना सामान
टुकडे-टुकडे छतो के नीचे
मत बनाओ समूचे
अपने ऊपर के आकाश को
टुकडा-टुकडा छत
बहुत बडा है
एक छत मे
रहने का सुख ।



नारो की भाषा मे

नारो की भाषा में
चीख रहे थे कुछ लोग
जगल में शहर के।
पेड थे केवल श्रोता,
काम से काम था जिन्हें अपने
खडे थे वही प्रतीक्षारत आजीवन
जादुई छडी छूकर
अडियल अपरिहार्य रिश्तो की।
वहॉ भी पहुँच गये
पल सकते थे जहाँ लोग
बदल सकते थे
नारों के अनुसार
अपनी घिसी-पिटी सडक
जानते थे किन्तु वे
मुद्रास्फीति के इस युग में नारो का
विनिमय।
जेब मे रख लिया
बदली हुयी टोपी की तरह
उन्होंने नारों को
दे दिये कुछ गडे हुये सिक्के
बाहर थे जो चलन से
मुँह पर था ताला
अब नारो के स्थान पर
मतवाला था उतना ही हाथी फिर,
रह गयी थी
अब नारों के पास वही घिनौनी यात्रा
पेडो से सिक्को तक
सकल्प नही था क्योंकि
उनमें समिधा बन जाने का
अपना निज का



बूढ़ा मजदूर

देखते क्या हैं
पडित जी।
यही लाल मिर्च वाला नमक
मैले फटे कपडे में बॅधा
सूखी रोटी खाते
बीत गयी है सारी उम्र।
कुछ सोचा नही है इसके अतिरिक्त आज तक
और कुछ रचा भी नही है
ईंटे ढोने के अलावा
कितना मित्र वत्सल
अकिचन सृजन है यह।
पारस पत्थर होगे किसी के हाथ
सूख जाती है
मेरे हाथ के स्पर्श से
छप्पर पर लगी लौकी भी
मैं हूँ
लू के इलेक्ट्रिक कन्डक्टरो का अभ्यस्त
शेष है-
धूप का दाहकत्व उगलता चाबुक
मेरे लिये।
बनाता रहा है कर्जदार
घर मे हर बच्चे का जन्म
गरीबी के बाणो की शय्या पर लेटा
अभाव का बेटा।
मेरी निरूपाय झोपडी पर
पतझडी शाम सी
रही है उतरती निर्धनता
बन गयी है धुये का आकाश
यह अपरिहार्य व्यवस्था मेरे लिये

खग शिशु

चढ रहे हैं खग शिशु
बेडौल सीढियॉ उम्र की
बेला के नीचे।
बेला नही
कल्पवृक्ष है उनके लिये यह
चिन्ता से मुक्त यथार्थ की
पागल परिवर्तन के
अज्ञात है उन्हे मात्स्य न्याय,
जी रहे है वे वर्तमान,
जो गणितहीन कला है श्रेष्ठ
जीवन जीने की।
यह खुद कविता है कवि की
कुछ नही है इनकी कविता से सॉठ-गॉठ।
सॉपो की बस्ती
सॅपेरो के डेरे
उठता हुआ धुॅआ नही देखते हैं यह।
मॉस के बडप्पन मे
मत खोजना इन्हे
यह दूर हैं छोटे बडे आलिगनो से भी
बेला के नीचे पसरी छाया मे
प्राप्त करते हुए नकल करने की चेतना
सहलाया है मॉ की ममता ने
पखो को अभी तक इनके
मटमैला विस्तार धन का
नही दे सका है इन्हे अपने दश
अपरिचित है क्रूर अट्टहास परिवर्तन का
दूर होकर व्यापारी सगीत के पचडे से
यह भोली सी
हृदय के आकाश को भरती
तुम्हारी चहक-
चुरा ले गयी है मेरा मन
शेष है अब गुलाबी स्पर्श
झकृति पूर्ण अलौकिक तन।

माननीय मुन्सरिम साहब

लॅंगडाते प्रवेश द्वार पर
कार्यालय के
उदास आभा के धनी
घिरे बोलती बीमार फाइलो से,
कीडा लगे गले फेफडो वाले
काले फूल से
राख और पत्थर से युक्त
चन्द्रमा के समान।
मोटे मुर्गों को पहचानते कनखियो से
मरणमयी अस्पताली औषधि निरपेक्ष दिव्यता पाले,
मटमैले अनुभवो के गट्ठर
मूर्तिमान बजबजाते भारतीय न्याय
बैठे हैं
माननीय मुन्सरिम साहब।
चाह कोई कितना महान हो
उनके कुटुम्ब की शान हो
विश्व विजेता हो
सघर्षों से घिरा हो
पागल कवि या सिरफिरा हो
सन्त स्वाभिमानी
राष्ट्रभक्त बलिदानी हो
यह उसे शाम तक
त्रिशकु की तरह लटकाये रहेगे
अपनी अभ्यस्त पतझडी स्पजी
मानसिकता मे फॅसाकर
दिखाये रहेग अन्धकार का
अभेद्य और चुम्बकीय विस्तार
क्योकि इनके लिये हर आदमी
मात्र थोडा सा सुविधा शुल्क है

धूप करे हस्ताक्षर
घिरा वैज्ञानिक उपकरणो से
गूदड गिराता अनन्त आकाश
नदी का किनारा, लहराता सागर
माँ का हत्यारा, इलेक्ट्रिक झटका
सुन्दरता की चाशनी
राम–रहीम
यह सभी मिलकर
हिलाने म समर्थ नही है इनके हृदय को
डिगा सकती हैं इन्हे
तो बस मुद्रा से बॅधी मुट्ठी
नुकीली निर्लज्ज आलपिन
महसूस करा सकती है
इनके सुन्न शरीर को
बहते गन्दे नाले के जल सा स्पन्दन
रुऑसी छवि
और अपाहिज ऑसुओ से युक्त
साथ मे एक गहरा खाकीपन शेष है
आगुन्तको के पास इनके रहते।
रेगिस्तान मे
मछली की शिकार के समान
समय सरकार और व्यवस्था को
कोसने के लिये

 सियाराम मिश्र

जिन्दगी चार दिन की

भाव आते ही
होता है सम्मुख
ठहरा हुआ जीवन क्षण भर के लिये
जाडे मे पहाड की प्रकृति की तरह।
धीरे-धीर समुद्र मे समाधि लता सूरज
सूखा पेड जलती चिताऍ
ढहते कगार
दिन गिनती ऑखे फाडे एक वृद्धा
उॅगलियॉ डाले सफेद उलझे बालो मे
होता नही है तब
मौसम का हाल बात चलाने के लिये
ललकते बच्चे भी नही होते हैं-
मिठाई के लिये।
ऐसा लगता है, मन के किसी कोने मे
लोहार लोहा पीटता हुआ
मार रहा है घन
और कहता है हाय ।
इतना कम समय।
स्वाद होने लगता है समाप्त
आता है मन मे-
एक कविता लिखूॅ
क्षण भर भी बहुत है जीने के लिये-
अच्छी तरह।
मर जाता है टिमटिमाते
लैम्प पोस्ट को जलाकर
जीवित होने के लिये पुन।
नही आता है विचार
बन्द करना है हमें-
जीवन के पृष्ठ काली फाइल मे

धूप करे हस्ताक्षर

सियाराम मिश्र

यद्यपि मटमैला बनावटी रग
जबडा फैलाये
भूखी कुदाल लिये
नही होता है वहॉ।
सडता हे जब काई फल
फटती है जब कोई किताब
चढता है हॉफ हॉफ कर कुली पहाड पर
ढोता है पतझड जब काई जगल
तब लगता है
तुम एक ही तरह से सब मे हो विद्यमान।
कसाई क छूरे से झॉकता असुरत्व
कम्प्यूटर से जन्मी कविता
घडियाली स्वाद जीभ का
असह्य बाझ स लदा
चूॅ चूॅ करती बैलगाडी
बेहूदे अन्ध विश्वास
धर्म की राजनिति म सिकती
राष्ट्रीय एकता
इन सबने महसूस नही होने दिया है
मुझे जिन्दगी है चार दिन की।
आत्मीय होता है जब हर पल
तब फैलती है सामने
पकी और अधपकी जमीन
घुलने लगता है आदिम भय
लगता हूँ प्राप्त करने
बेडौल पत्थर को अनुकुल मूर्ति मे
बदलने का सुख।
भुजाओ मे समेट कर कालखण्ड को
इस अहसास के साथ
जिन्दगी है चार दिन की।।

**

सरकस के शेर

बन गया है
मालिक का कोडा तुम्हारे जीवन की सीढियॉ
झोक दी गयी है तुम्हारा स्वतत्रता
अन्ध कुऍ मे पेट क
काल रजिस्टर का गिनतिया स
जुड गया हे तुम्हार जीवन का प्रभात
कर रही है तुम्हारी वीरता का विषय बनाकर
बहस एक मरियल रेगिस्तानी उॅटनी।

ऋतुओ की सुधापायी तुम्हारी जीभ
टकरा गयी है श्रमजीवी दरिद्र हाथो स
रगन लगी हे तीव्रता स तुम्हार ऊपर
शिकारी ऑखो की सहमा चमक
सुॅघा दिया हे किसी ने
दासता का क्लोरोफार्म
हा गये है। सरकस के शेर
बदलियो के गूदड से ढके सूरज की तरह
आतिशबाजी के सॉप की तरह
मात्र एक ऐठ लिये और लिये
सुगबुगाता क्रन्दन।

होते यदि तुम मनुष्य।
क्रास पर चढे ईसा की प्यास
इमाम हुसैन के बच्चे के सूखे ओठ-
की तरह उगा देते अखरोट की पौध।
सकल्प के अभाव मे
नही बनाते विवश मन को
उस गरीब आदमी की तरह
जिसे डस लिया कैंसर रूपी
तक्षक ने।।

❀❀

प्रिय दर्शन हो शिशु

घास की नोक पर ठहरी
ओस की बूॅद सा लिये विचार।
तृण की नाव को
मान लेते हो समृद्ध जहाज।
चिन्ता नही है तुम्हे
इतिहास के वक्ष पर बैठने की।
हर झकझोरता परिवर्तन
तुम्हारे लिये है
अखबारी समाचार से कम महत्व का।

भेडिया छिपा लेते हैं
किन्तु जब दॉत दूध के
हो जाते हैं मनुष्य नुकीले पत्थर
आता है अवश्य एक युग
लुप्त हो जाते हैं मानव
मात्र हड्डियो के अवशेष छोडकर
दधीच की तरह नही होता है
उनका स्मरण।
बल्कि विलुप्त डायनासोर की
तरह/रहती है उनकी
लोमहर्षक याद।

कविता फूटती है
देखकर तुम्हे हे शिशु
कुछ नही है ससार
बन जाते हो इसकी अप्रतिम व्याख्या
नही याद आती हैं
तुम्हे देख कर
घोडो की छिली पीठें
केपसूल के भीतर का कुडआपन
बचे रहते हो सदैव
कसैले स्पर्श से घडी की सुइयो के

क्या यह सभव है
तुम सदैव रहो हमारे पास
और मैं शेष मे हो जाऊँ अशेष
आनन्दित पुलकित

★★

खिलौने से

खेलता था तुम्हे
समझ कर जीवन का सर्वस्व
बदले मे
बिना तनाव के था सहज आनन्द
यौवन मे,
खेलता था तुम्हारे साथ
भूल कर यातना की घिसटती यात्रा
रीझ कर मीठे गान से बहेलिये के
ध्वनित करता घिनौना वाद्य वासना का-
और फिर निकल आता चन्द्रमा के साथ।
समय नही था
पायल पहनाने का आँधी को।
चाहता हूँ अब ठहरना
खिसक गयी है जब धरती,
पावो के नीचे की।
मन है आम की गुठली के दाम बसूलने का
आँसू तो बँध जाते हैं
आयु की पुस्तिका पर अप्रत्याशित जिल्द के समान
खेला जा सकूँ
समूचे बचपन के द्वारा
टूटने के पहले तक।
मेरी है अभिलाषा
देश का भविष्य नही
खिलौना सम्हाल बचपन के समान
रहूँ बढता।
क्या बुला सकूँगा
किसी नन्हे बालक को
अपने भीतर
मचीय जोकरो को भगा कर
रह कर नग धडग

☆☆

जाओ तुम प्रिय के घर जाओ

प्रणय पथ पर चलो
फूल सा जीवन भर मुसकाओ।
यही कामना है कि कलामय,
पल पल खिले तुम्हारे।
और शब्द बन कर शहदीले
उर से मिले तुम्हारे।
बाहर बाहर कचन-
भीतर से मधुरस छलकाआ।।
चॉदी सी राते बन जाये
बने दिवस सोने से
सिर पर हो विवेक की पगडी
रूप बचे टोने से।
कृष्ण पक्ष से कहा
कभी मत इस ऑगन मे आओ।।
खुलो मिलो लेकिन
समष्टि की धूप रहे सिरहाने।
चादर है तब तक-
जब तक है उज्ज्वल ताने बाने।
प्रिय की स्वर वाहिका,
अधर की वर वशी बन जाओ।।
परिजन पुरजन सास श्वसुर की
रहो सदा मुँह बोली।
लिये कर्म निष्ठा का सबल
चलो सजा कर डोली।
राखी मेहदी और साथ
सेदुर की रीति निभाओ।

सियाराम मिश्र

जब तक हॅसता चॉद गगन मे

जब तक हॅंसता चाँद गगन में
तब तक हॅंसती रहना।
साथ-साथ तैरना और तुम
साथ-साथ में बहना।

सबसे ऊपर प्रेम मान कर,
झडा ऊँचा करना।
यह जग का लेकिन पथ दुर्गम
सम्हल सम्हल पग धरना।
गडता सूनापन सहलाकर
कुछ सुनना कुछ कहना।
दर्पहीनता के गार स
सुन्दर महल बनाना।
देहरी नई प्राण को पल छिन,
प्राणो से अपनाना
हो हर रात दिवाली जैसी
होली दिन का गहना ।।
जब कगन हो मौन
उस समय राखी की सुन लेना।।
मेहदी के आगे बिन्दी को,
बिछिया को चुन लेना।
सुमन सजाना किन्तु विरह को
मान कसौटी सहना।।
अलकार है लज्जा सुन्दर,
यदि सन्तुलन सम्हाले।
स्वाभिमान को सदा मानिनी
रहती अनुदिन पाले।
नेह जहॉ है अगर तनिक भी
होता नही उरहना।।



तुम सुन्दर हो

तुम सुन्दर हो
जग सुन्दरतम।

इस जीवन की फुलवाडी में
हर सुमन मस्त है आनन्दित।
फूलो से तारागण पल पल,
अपने प्रिय के हित हैं अर्पित।
कितना मनोज्ञ मनभावन है,
मधुमय धारा का अविरल क्रम।।
तुम जले नही यश ज्वाला में,
गत की पीडा मे पले न तुम।
कल क्या होगा इस शका मे,
जा कर हिमगिरि मे गले न तुम।
दर्पोन्नत होकर अन्तर मे
पाला न कभी तुमने मति भ्रम।।
सच का मन्दिर है मोम नही,
जग मात्र प्यास का जीवित घर।
इतिहास खेत का धोखा है,
है वर्तमान बस पावो पर।
क्षण क्षण मधुमय यदि दृष्टि धवल
हर गति अतीव पावन सगम।
है मौत क्षणिक, जीवन महान,
है पथ का मूल्य बडा होता।
घट टूटे कितनी बार किन्तु,
नभ अपलक नित्य खडा होता।
केवल ऑधी का दीप नही,
मानव की सासो की सरगम।।

विचित्र लगता है तब

लोटत समय जब बाजार से
खचाखच भर झोल का रस्सी जाता ह टूट
आरआता है याद
घर क पास पहुँचने पर
छूट गया है दुकान पर ही काई मूल्यवान सामान।
एक ही छज्ज क नीच
आ जात हैं वे अनायास
जलवषण मे एकाएक
टपकने लगती है श्रृगार की कविता।
काई वर जब लोटता हे घर
नव वधू के साथ
ट्रेफिक हाता है जाम
कैसी हाती है कुढन तमाम।
पहुँचाना हाता है अस्पताल
किसी प्रिय जन को
और करन लगता है कोई बवाल कन्डक्टर से
कितना विचित्र लगता है तब।
पॉव लेता है तोड काम करते करते
शाम को बच्चो के पेट की आग
शान्त करन वाला कोई श्रमिक
कैसी होती है पत्नी और बच्चो को मरोड
एक अहसास निरुपाय टूटन का
कवि के लिये
मर्मस्पर्शी स्थलो की पहचान
किसी नसेडी के लिये घूमता आसमान
जब हम होते हैं प्रसशा के पात्र
जहॉ अभी तक थे टपकते कुपात्र
कब होगे हम
खुरदुरे स्पर्शों से दूर
परे अखबारी दुनिया से

★★

उग पडने के लिये

कुत्ता पूँछ हिला कर
दहाड कर शेर
मुस्करा कर फूल
कुतर कर कोट को चूहा
तस्कर सन्धि द्वार पर करता है अपने को व्यक्त
जुडकर आदमी से आदमी
दृष्टि मे बादल
ज्वार मे सागर
मझधार मे नाव
पहचान कराते हैं निजत्व की।
व्यक्त होने की तडप से
बच पाना होता हैं बहुत कठिन।
किन्तु आज भी लोग
शब्द की देह मे कील गाड कर
गरम रखने के लिये पेट की भट्ठी को
लेते रहते हैं चुप्पी की
चिता पर आजीवन।
सभवत
जीवन नाम है अभिव्यक्ति का
जहॉ अपरिहार्य है लडाई
सब की प्यास के लिये।
राम हो या रावण
सामने होती है-
खौलते तिलमिलाते कथानक की ॲधेरी रात
जहॉ चौकन्ना फावडा
खडा है खोदने के लिए
पुरानी जमीन।
यहाँ होती है प्रतिस्पर्धा
अन्धकार के सृजन मे भी
घातक दभ के साथ उग पडने के लिये

★★

क्या है कविता

क्या है कविता
क्यो लटके थ
ईसा सलीब पर
मॉ से बच्चे का सवाल है कविता।
रोडरोलर नही है
ऊबड खाबड को बराबर करने वाला कविता
अभियन्ता की बेईमानी
के गड्ढे मे फॅसी
बुढिया की टूटी टॉग का
अहसास है कविता।
प्रयत्न है कविता-
शब्दो की खिडकी से
आकश का दर्शन कराने का भावात्मक।
कविता है
रूप के जगल मे
फूलो का गुलदस्ता सजा देने का काम।
कुछ घण्टों के लिये
भेडिया की शक्ल बदल कर
मनुष्य बनाने का कारखाना है कविता।
पीडा की नदी को
करने के लिये पार
भावो के पाल सम्हाले
मॅझधार की मौज है कविता।
ऑगन भर पत्थरों मे
बेला की गन्ध
सजा देने का नाम है कविता।
कविता है
जो व्यापार और रोटी की
चिन्ताओ के मार्ग को
वापस कर दे
प्रेम के आका
ा की ओर
दिखा दे
पहाडी के ऊपर से उगती हुई
सुहावनी भोर।

धूप करे हस्ताक्षर — सियाराम मिश्र

तानाशाहो के कानो की जूँ नही
टोपी भी नही है लोहे की
सिपाही के सिर की।
कविता है-
भगतसिह को दी जाने वाली
फॉसी की निर्भयता,
जो बनती है स्वतत्रता का वटवृक्ष।
सागर का खाराजल
नही है कविता-
कविता है बादल
बुझा देता है जो धरती की प्यास।
दूसरो को नही
खुद को सुनाने के लिये
होती है कविता्
दूसरे तो हो जाते हैं सन्तुष्ट
मात्र उच्छिष्ट से
अगर सच्वी है कविता ।
एक सॉड बनाता है
यहाँ कण्डे की बठिया,
काम नही आती है यहॉ चठिया
मठिया नही
ससार के सभी मन्दिरो से
ऊॅची है कविता।
दर्प के हथौडे को
फेक कर भावना की नदी मे
लय के साथ बहती
इगितों से कहती
जीवन के साथ रहती है कविता।
क्रान्ति के जगल की
पहली चिनगारी नही है कविता
कविता है-
चिनगारी पर जगती हुयी
राख की पर्त का दर्द
कविता लोहे का चना नही
साबुन भी नही है कविता।
जिला मजिस्ट्रेट की तरह
नगर को जलाने का अधिकार नही
दो बस्तियों को

धूप करे हस्ताक्षर
जोडने का पुल है कविता।
कोई बडा एक्सरे भी
नही है कविता
दश भी नही है
घडी की दो सुइयो का
मरणासन्न के लिये।
नही है आक्सीजन का सिलेण्डर यह काई
खौलता हुआ
पैराग्राफ भी नही है शब्दो को एकत्र किया हुआ।
भावना के सुवासित जल मे
धीरे-धीरे
भीगी हुयी गठरी है कविता।
रेल की पटरी नही
इन्जिन नही
गाडी नही है कविता।
कविता है देहात के स्टेशन स
गुजर जाने के बाद का सन्नाटा
या यो कहे
जीवन का हिसाब-किताब
नही है कविता
जीवन है कविता।
गोली नही
बन्दूक की नाल भी नही है कविता
कविता है-
नाल के कुन्दे की लकडी मे
छिपा हुआ गीलापन
या पत्थरो से निचुडकर
निकलती गगा है कविता।

सियाराम मिश्र



इतने सुख के लिये

कि मेरे दाह सस्कार मे
सम्मिलित होगे,
एक दो नही सहस्र
टाँग रहा हूँ सलीब पर
व्यक्तिगत सुख को,
नारो की दफ्ती लिये हाथो मे
होकर निर्लज्ज
मॉग रहा हूँ सब का सुख
हाथ की झोली फैलाकर।
वही मुरझाऊँगा।
हॅस रहा हूँ जहॉ यद्यपि
गाऊँगा वही रो रहा हूँ जहॉ
केवल इतने सुख के लिये
रस प्राप्त करे
मुरझाने की याद मे
हॅसते-हॅसते अन्य लोग।
अपने को न समर्पित करे चाहे मेरे समान
बोझिल हो रहा हूँ
झूठे वरदान से एक अव्यक्त सुख के।
प्रिय हैं मेरी आहें समाज को
निकल रहा हूँ जानबूझकर
बबूल के वन से इसलिये।
इगित पर एक तुच्छ व्यक्ति के
निगल रहॉ हूँ सीता का सुख राम बनकर।
नही किया है
किसी ने याद
समृद्धि के क्षणो में राजा हरिश्चन्द्र को
खेला जाता है-
उनका नाटक इसलिये

धूप करे हस्ताक्षर

सियाराम मिश्र

क्योंकि वह हो गये थे बर्बाद दाम दाम
अरे भाई।
केवल इतने सुख के लिये
बिखराता है ओस के ऑसू
कोमल पखुडियो पर सुमन,
लटका कर मरघट के फाटक पर अपने व्यक्ति को
कफन नही दे पाता है रोहिताश्व को
राजा हरिश्चन्द्र।
केवल इतने सुख के लिये
लोक मुझे करेगा याद
मरने के बाद
तडप तडप कर मरी थी मेरी पत्नी
पहुँच नही सका था मैं उसके पास
बॉबी बन गया था मरा शरीर
प्यास से मरकर भी नही हुआ था अधीर
कर दिया था मैंने अपने पुत्रो का नाश
ससार के पुत्रो के लिये
केवल इतने सुख के लिये,
रह जाऊँगा मैं ओठ सी कर
बिलखती द्रौपदी को देखकर भी।
जबकि सुनिश्चित नही है
कहाँ जाऊँगा मरने के बाद
नही बनना है मुझे तुलसी
मुक्तिबोध और निराला
कवि हूँ नये प्रकार का
मालामाल हूँ, सस्ता लिखता हूँ
दिखता हूँ सबको अच्छा
लगती है बहुत तेज धूप
व्यष्टि के घोंघे से निकलकर।



 सियाराम मिश्र

कबूतर ने कहा

कबूतर ने कहा–
तुम मनुष्य हो
बात नही करूँगा तुमसे
खडे हो तुम–
शहर का पारदर्शी कालापन लिये,
एक बाजीगरी छुपाये।
अभी एक पुलिस का सिपाही
ओठो को चाटता
गया है यही से
विभागीय घिसी–पिटी अकड लिये
जीभ लपलपाता
सुरक्षित नही रह सका था मेरा भाई
बनाये नाड मे
मन्दिर के लटकते घटे के ऊपर
पुजारियो की भीड मे।
शब्द नही है मेरे पास
गुटर गूँ के अतिरिक्त
दिया है जिन्हे मैंने
अर्द्धरात्रि के बाद जगे बच्चो को नीड मे
आश्वासन क रूप मे।
लिया था जिन्हे हमने सूरज से।
मैं तो बस बुलाऊँगा सूरज को
जो मुझे पहनायेगा धूप का कपडा
दगा रोटी खोजने की ऑख
पहचानते हैं हम
इस कटीली दुर्निवार हवा का रूख
कबूतर ने कहा
बात करेगे हम–
पेड से सूरज से नदी से
क्योकि कम शब्द हैं इनके पास हमसे भी
भेडिया नही है चुप्पी मे छुपा उनके पास
आकाश है
ऑगन मे पॉव फैलाये।।

★★

 सियाराम मिश्र

विवाह का मतलब रोटी

उम्र साठ वर्ष
मुख मे झुर्रियों का पतझडी प्रवेश
भावावेश नही है कोई
सुविचारित है विवाह इस आयु मे।
उत्साह भी नही है
मौसम को भीच लेने का
समुद्र के ज्वार की तरह कोई,
छत्ता है मात्र मोम बनता
दो बार निकाला जा चुका है जिसका शहद
सिक रहा है,
चूल्हे मे रोटियो के साथ
वह यौवन का प्रेम
कितने दिन निभेगा साथ
गर्मी में ताल के सूखते पानी की तरह
इस अहसास के साथ
कोई लेगा दबोच
कामान्ध मान्सल प्रयोग के लिये,
चिन्ता भी नही है यह।
बात करने के लिये रात मे
शेष है जोडो का दर्द
दूसरो के प्रेम के किस्से
और रोटी कपडा के घिस्से
क्योकि अब,
विवाह का मतलब,
चॉद नही, नौकाविहार नही
समेट लेना नही एक क्षण मे पूरे मौसम को।
गिरत पत्ते के लिये
अर्थयुक्त होती है जैसे धरती
उसी तरह विवाह का मतलब है रोटी।

★★

 सियाराम मिश्र

पेड

मैंने देखा
पेड भयभीत हुआ, सहमा
सोच में डूबा सा उदास हुआ
जो उसके छिलको से नही
निकली थी भीतर से
मन की भाषा मे
मौन के स्वर मे बोला-
टेढी डाल ने
जो टकराती थी सिर से
पथ के यात्रियों के
बुरा भला कहा था उन्होंने
गाली दी थी पेड को
दर्प में बहा था
पेड अपने जनक होने के।
कुछ लोग
खुश थे पेड के फल खाकर
आक्रोश में भरे थे
कुछ माथा सहला कर
सभी डालों का सीधा और सरल होना
सयोग है एक विरल
पत्तियो से डरना
प्रसन्न रहने वाले पेड का
पतझड ओढकर।
बिखरा था पेड
उजाड चिन्तन मे
अभिशाप है क्या
पत्तियो मे मेरा रग है कहना।
डालो के कधो पर चढकर रहना,
या बाधक है-
सबकी अलग थलग स्वतन्त्र पहचान मे
पेड ही तो
सब है।।

★★

सियाराम मिश्र

प्रिय लगता है

पपडाये ओठो से
नाम का बिगाडना
ककड सी गड रही उपेक्षा को
सह जाना फागुनी चुनौती सा
किसी का
लजा कर के रह जाना
प्रिय लगता है।

टाई और सूट को उतार कर
मात्र जाँघिया पहने
मेज पर
पसार कर चरण
बोझिल से वैभव को त्याग कर
दुनिया से मर जाना।
क्षण भर के
मुक्ति भरे जीवन के हेतु
बलपूर्वक बोलना
मीठा सा व्यड्ग्य अधर पर आना
प्रिय लगता है।

अपने परिवेश को
गीतो मे घोलना
मीठे अहसासो को
शब्दो से तोलना
कभी-कभी वाह-वाह सुनकर
भीतरी नदी मे तिर जाना
अपने सन्दर्भों को ठहराना
देखना कि कैसे
तैरेगी कागज की नाव

प्रिय लगता है।
प्रिय लगता है-
चौरस चबूतरा-
सहज खोज
घास पर फुदकती चिडिया को देखना
मुझको देखे
भीड भरा राजमार्ग
और करूँ मैं अनुभव
जीवन है खारेपन मे भी
पलको मे एक आध
पल को ही रह पाना
सीता के पॉवो से कटक निकालना राम का
प्रिय लगता है।

प्रिय लगते हैं
चीनी से रक्त मे घुले
झूठ के मनोज्ञ काफिले
आधुनिक शलभ मुझे मिले
बन जाऊँ सत्य की शिखा
उडकर उनका आना
उठवाना भूमि पर गिरी हुयी कलम
अनखाये हाथो से
झुँझलाना झूठ के बडप्पन मे
ढोकर गभीरता सदा
शब्दो का बागी हो जाना
प्रिय लगता है।

☆☆

धूप करे हस्ताक्षर
झाड दे घडी पर जमी धूल
और कह दे
कि हो गया है समय पूरा
बन्द हो जाए
एक कालखण्ड के लिये
भूगोल के जिज्ञासु
कोलम्बस का कार्य
पतझड मे
गिरे हुये पत्ते की तरह
या नीद मे डूबे कलकत्ता की तरह
ऑखो मे
प्रभात का सपना सजाये।

सियाराम मिश्र



अब अधकार को कहो नेति-नेति

अभिमान होता है कभी
पूरा अँधेरा देख लेने का
किन्तु टूट जाता है दर्प
जब देखता हूँ नीचे
सीढियो की अनन्त श्रृखला।
देखा है धज्जियॉ उडवाते
असहास सहमे हुये कानून को
सत्य को मुँह नुचवाते,
इलेक्ट्रिक कन्डक्टरो की सहते यातनाए
आ गया समझ मे
वेदान्त दर्शन
वह नही है ससार
जो दिखाई दे रहा है यथार्थ मे।
बहुत से लोग हैं
चोरी के फिराक मे नये जूतो की
या चक्कर मे सोने का मुकट उतारने के
सदा जाते हैं मन्दिर मे।
बलात्कार भी हो सकता है उद्देश्य उनका
कुर्सी का या मठाशीश बनने का
रोग तो बहुत पुराना है
लटियाया हुआ
परमात्मा नही,
अधकार को कहो नेति-नेति
क्योकि यहॉ छिपी है
अधिकारी के निशाने मे रिश्वत की मोटी रकम
अपने मालिक की हत्या का सूत्र
कर्तव्य निष्ठा के स्थान पर
श्रेयस्कर है इसलिये
जानवर पर विश्वास करना
अपेक्षाकृत मनुष्य के
फॅसी हुयी
चिल्लाती लग रही है
अब जहॉ देखिये वहॉ गाय
जलकुम्भी मे,
फैल रहा है
घुटन भरा अँधेरा
चारो ओर
भीतर बाहर।

☆☆

तट हो गया है प्रेम

जब में शिशु था
प्रेम था मेरे लिये
उत्सुकता भरा एक आश्चर्य
नया नया आविष्कार
या कोई सर्कस का खेल
क्योकि मैं तो
होता था प्रसन्न
धरती पर कपोलो की
मॉ के चुम्बन का कल्पवृक्ष उगाकर।
उतावलापन था
जवानी मे प्रेम
स्विच दबाकर मौसम का
पागलपन भर लेने का मुट्ठी मे
और पकी जवानी मे
थी सहमति
सकल्प गरमी और बरसात बिताने का
एक ही छाते मे।
कर्तव्य है प्रेम अधेड होने पर
सम्हाल कर रखना लोहा निहाई पर
घन चलाना घॉघरा सम्हाल सम्हाल कर।
यज्ञ है प्रेम
अपरिहार्य अदन्त बुढापे मे,
अन्धे की लकडी है प्रेम,
जूझते जूझते प्रवाह से
तट हो गया है प्रेम
पावन रेतीला।



शहर के जगल मे

चीख रहे थे कुछ लोग
शहर के जगल मे
दफ्ती लिये नारों की
पेड थे केवल श्रोता
खडे थे जो आजीवन
प्रतीक्षारत अनुबन्धित कालेपन से।
घूरते से हर आरा लिये व्यक्ति को
दाता को कोसते
होने के लिये जीभहीन
काम था जिन्हे अपने काम से।
पहुँच गये अब वहाँ
वे थके हारे गले के लोग
जादुई घडी छू कर स्फीयमान रिश्तो की।
चल सकते थे जहाँ लोग
नारो के अनुसार
सकते थे बदल
अपनी घिसी-पिटी सडक को
किन्तु वे मुद्रा स्फीति के इस युग मे
जानते थे नारो का विनिमय
नारे जा जीभ से कठ तक
सके थे पहुँच
रख लिया जेब मे
चुनावी टोपी की तरह निकाल कर
दे दिये कुछ गडे हुए सिक्के
बाहर थे जो चलन से।
अब ताला था मुँह पर
नारो की जगह।
मतवाला था उतना ही फिर हाथी
रह गयी थी
नारो के पास
बस एक घिनौनी यात्रा
पेडो से सिक्कों तक।



बीमार बालक

बसा जाता रहा हूँ
शतरज की गोट की तरह
लोगो के द्वारा आज तक।
सच्चाई की धूप मे
नही सेक सका हूँ एक भी पूरी रोटी।
मेरे पास तो अब
अपलक छत का निहारना,
नर्सों की पदचाप का श्रवण
दिन गिनती आयु,
घुग्घू की ध्वनि
दिखाई देती दो दिये की लौ,
घरवालो की झिडकियाँ
अस्पताली उपेक्षित व्यवहार,
निठल्ले सोच का बोझ फिसलन का साम्राज्य है
बन्द कर ली हैं, मैंने आँखे
यात्रा के अन्तिम पडाव मे।
अब पाँच पान्डवो को नही
भाई, पिता, द्रोणाचार्य तथा तातश्री को नही,
द्रौपदी की तरह
पत्थर होता हुआ
तुम्हारा असहाय पुत्र
मात्र तुम्ही को देख रहा है
दृग बिछाये खिडकी पर
और द्वार पर कान लगाये
मात्र तुम्ही को
देख रहा है।



सियाराम मिश्र

बैठ गया है उल्लू

बन्दर को चाहिये था
होना किसी पेड पर
नही है वह वहाँ
सुनता है नानी की कहानी
बैठा है अलाव तापता
दे रहा है अहिसा पर भाषण,
शान्तिवन मे
एक मतवाला भेडिया
गान्धी की समाधि पर बैठा हुआ-
फेक रहा है सडे शब्द
जी रहे हैं
पतझडी जीवन साधुजन
दॉत पीसती अव्यवस्था का शिकार
गली के घरो मे।
दे रहे हैं चिन्तन समग्र देश को
लाल वस्त्र पहन कर डाकू
हरे-भरे वृक्ष के ऊपर
अब शायद बैठ गया है उल्लू
नही रह गया है अन्तर
बाज और चिडियाघर मे।
पसर गयी है-
श्मशान मे पडी-
खोपडियो की अव्यवस्था
जिसे होना चाहिये था जहाँ
नहीं है वहॉ वह आज
नही रह गया है कोई फर्क
लुटेरो की तिजोरी
और भामाशाह मे।

**

बंगाल का अकाल

शब्द नही थे
अकाल था जब बगाल का
कब्रें थी रहने के लिये
पीठ थी,
चाबुको की मार थी किन्तु
मरणमयी दिव्यता-
छिपी थी भूख की ज्वाला में
परन्तु पेट था
नारे थे
हाथ तथा पॉवों दोनों के अभिन्न।
काट रहे थे, हुतात्मा-
घिनौना अधकार सूर्योदय की प्रतीक्षा में।
कुर्सी पर न्योछावार कर रोटी को
आज
धोखा देते अपने चेहरे,
दीवाल उठाती हडतालें, बौखलाये विचार
गडे हुये मन्तव्य
अवसरवादी झन्डे, बूढे बरगदों के कटान
दुधमुँहे बौने प्रवेश
शेष है अशेष।
यह है अन्तर
तब हम समूचे आदमी थे
गुलामी की बेडियाँ पहने
जबडा फैलाये अकाल के मुख में
और अब,
फँसे गाभिन चर्चाओं में
शब्दों के तिलिस्म भाँजते
मात्र पहचान लिये गये
जादूगर हैं।

✿✿

सियाराम मिश्र

वासन्ती हवा

सिकुड गयी है
धमकच्चर सहते सहते महानगरों का
कारखानों का धुँआ पीते पीते।
ट्रान्जिस्टर सी जेब के।
गमले में उगाये गये पौधे के समान
गरीब को बीमारी में बताये गये-
फलों की तरह अलभ्य।

बोलती रही है-
छुअनों में आज तक-
बफौली नही बनाई है इसने
किसी के गाल पर कभी।
साल रही है-
नास्तित्व की छटपटाहट
देखा है उसने
गल चुके हैं पाण्डव हिमालय में
कौन लायेगा उन्हें
अज्ञातवास से
रोग से नही
मर रहे हैं उपचार से लोग
अभाव में वासन्ती वायु के।

क्या है वासन्ती हवा।
तपेदिक की शिकार
जर्जर फेफडों वाली
बुढिया की तरह
जो है अब मरी तब मरी की
लडखडाती लटियाई स्थिति में।
कब लौट कर आयेगी
फुलवाडी की गन्ध का
डाकिया बन कर
उखाड कर अपने तिलिस्म से
युग का वनस्पतिहीन
जलता पहाड।

सियाराम मिश्र

हो रही है ओलो की बारिश

तेज धूप के निकल आने तक,
बन्द हो जाओ कमरे मे
सडक पर गये सभी से
कहा एक बूढे ने।

ओलों की बारिश हो रही है बाहर
नही होती है
ओलो मे कोई जात पॉत
नहीं मानते हैं यह
घातक चोटों के आगे कोई भाईचारा
तोड देते हैं एक पल में
सहानुभूति के शीशे
लगडी भोर के लिये
बुनते हैं अँधेरा
बरस रहे हैं सदियो से।

बरसना है इन्हे
कभी किसी धडॉंग में
कभी किसी समूचे परिसर मे।
निथरा और स्पष्ट समूचा बिम्ब-
तथा ध्वस के जीवन का
निर्मित करते हैं यह महाकाव्य।
फसले चौपट होती हैं-
कर देते हैं, गन्जी खोपडियों को चकनाचूर।
कोढी से घृणा
गुलाब से प्यार नही है इन्हे।
रख देती है काट कर
इनकी धारदार मार सभी को।

मन्द समीर नही
पिगल जटाओ से युक्त-
बोते हैं भयावह तूफान
फिर देते हैं कमरे के सन्नाटे को
आकाश की तलाश
इन्हें तो लडना है
कोमलता से सृजन से
गिरना है धरती पर
बिजली लेकर।।



 सियाराम मिश्र

मुझे बनाना खूँख्वार सम्प्रदायवादी

अन्यथा मैं हो जाऊँगा
जबडाहीन
कैसे कर पाऊँगा राज्य
मूक और भोली मछलियो पर
मन्दिरो मस्जिदो तथा गुरुद्वारो को चारा बनाकर
यदि न हुआ सम्प्रदायवादी
हो जायेगा भेदभाव
मेरे द्वारा त्याज्य
देखने लगूँगा सभी जगह ईश्वर
दूर हो जाऊँगा भाषा से-
सकुचित रक्त की।

हे विराट।
मुझे मनुष्य मत बनाना मनुष्य
बनाना मुझे हिन्दू मुसलमान या सिक्ख।
ताकि मैं इच्छा कर सकूँ पूर्ण तुम्हारी।
घृणा हो जाय
हमारी मजबूरी
बिना पतझड और वसन्त
बिना रात और दिन
कहाँ है ससार।

मुझे बनाना सम्प्रदाय का अगुआ
मठाधीश
ताकि अन्धे अनुयायी
झुकाते रहे सदा मुझे शीश
अदृष्ट रखना अपनी नीति को,
बहेलिया के गीत की तरह
लिखवा देना मेरे द्वारा एक किताब
ताकि मेरी जीवनी रहे आचार सहिता का भूत

मेरी आज्ञा का उल्लघन
बनायेगा नरक गामी
मत बनाना मुझे कवि या विचारक
नही तो मैं उधार लेकर सूर्य से
चमकीला प्रकाश
पहुँच जाऊँगा अँधेरी गुफा मे।।
नही कर पाऊँगा किसी
तस्लीमा का विरोध।

★★

ओ कवि

फूल ने कहा
कवि।
तुम्हारा मेरे पास लौटना
बात करने की आदिम इच्छा व्यक्त करना
लगता है स्काईलैब के गिरने की आशका सा।

बिक रहे मुर्गे की तरह बाजार मे
धुऑ पीते मजदूर की तरह तुम
फॅसे व्यवस्था के मकडजाल में
घुटते सडते कवि।

पहुँचाते हो कसैली गध को
अपने शब्दो तक
बारूद के दगे हुय निस्सार ढेर से तुम
प्रदूषण के अतिरिक्त
शब्दो से कुछ नया निकालने मे
असमर्थ हो।

फूल ने कहा ओ कवि।
मुझे अफसोस है
कि तुम अब
गोरख धन्धे से भरूपर
नारो मे बॅधा
लिजलिजा एक धुऑंधार
भाषण भर हो।।

सृजन उगाते नाश के द्वार पर
अवाक हो
लिफ्ट मे फॅसे आदमी से
भले ही खडी हो गयी हो
एक जगली पगडन्डी
लिपिस्टिक लगाकर
कविता के राजमार्ग पर
तुम हो गये हो उस छात्र से
जो सृजन के क्षणों मे
सह रहा है
अध्यापक की अयोग्यता।।

आज ऐसा ही हुआ

बिठालते ही प्रिय को रिक्शे मैं
गा दिया ऋतु ने
मन पसन्द गीत
बरसा दिया जल तेज धार में
आज ऐसा ही हुआ
गाडी के डिब्बे मे
जैसा हआ था बनावटी नीद मे
छुआ था उन्होने
जाडे की अलसाई किरण की तरह
शिशुओ की कोमल पलको की भाँति
वे सपनो सा तैरे
मन के ताल में
ऋतु का दिया हुआ सयोग
उपत्यका से वासना की
लिया था तोड एक फूल।
अन्यथा कोई बहा करता नदी सा
और मैं किनारे पर वृक्ष सा रहता खडा
प्रतीक्षारत अनवरत।
दबे रह जाते तुम
पौराणिक नगर से समुद्र के गर्भ में
बन भी न पाता कोई शोध ग्रथ निरर्थक याद में।
तुम्हारा स्पर्श
प्यासी रेत पर
एक अजुरी जल की तरह
सहेज लिया गया है मेरे द्वारा
अब तो खडा है झोला लिये
दुख के घर मे सुख
इतिहास के पूरे पृष्ठ सा
एक बया का घोसला
बबूल की डाल पर

सियाराम मिश्र

जनता की पसलियो मे

नारो की दफ्ती के नीचे
लिखी है एक इबारत,
चिपकी लगी है उसके ऊपर-
नही चाहिए हमे कुर्सी
निकालेगा कौन जलती शताब्दी मे
खुरपी से खोद कर
प्रेम के शाश्वत सम्बन्ध
सोख ले चाहे मध्यान्ह के दोपहर सा
रगो को हिसा।

भक से जला दो
आग में शकर झोंक कर
चाहे जलने लगे पत्तियाँ
अपने आश्रयदाता पादप से।
हो रहें है परिवर्तन
किन्तु स्कूल के गेट पर
तीन पीढियों से
एक बुढिया बेंच रही है कैथा।
आ गया है पोता उसका भी
सडे गले खण्डहर के काम
जिसे कहते थे लोग
मन्दिर या मस्जिद।

फिर चल पडेंगे कुछ लोग
थोडी सी शान्ति के बाद
जनता की पसलियों में
अपनी अबोली किन्तु धार-धार घिनौनी
योजना की कृपाण गडाने
आक्टोपस की छुअनों की तरह

जैसे पर्तों ने
प्याज को बनाया है
वैसे शरद नदी के समान बहती
आज की कविता ने
केचुल मे शब्द शब्द की
और उसकी मान्सलता मे
पिरो दिया है बुना हुआ झूठ
बच्चे के गाल मे गडाकर उँगली
हम कहते हैं हँसो
भेडिये के दाँतो पर
शहदीली पर्त चढाकर
क्षणभर हमारे साथ बसो।
मीरा के नन्दलाल की तरह नही
मकान न खाली करने का मन बनाये
किरायेदार की तरह।
सतीप्रथा पर रुग्ण तर्क की तरह
पेट के गन्तव्य के पथिक हैं जहाँ,
वही हम खडे हैं
बहेलिया के मीठे गान की तरह
योजन की कृपाण लिये
और सामने हैं
जनता की कमजोर पसलियाँ



सियाराम मिश्र

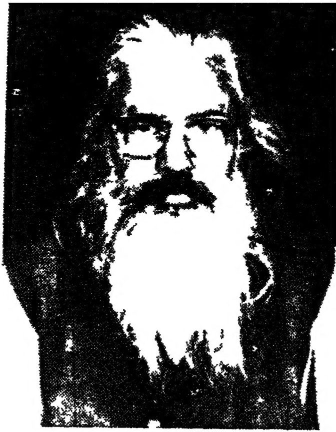
आज की कविता ने

केंचुल में शब्द शब्द की
और उसकी मान्सलता मे
पिरो दिया है बुना हुआ झूठ
बच्चे के गाल मे गडाकर उँगली
हम कहते हैं हँसो
भेडिये के दाँतो पर
शहदीली पर्त चढाकर
क्षणभर हमारे साथ बसो।
मीरा के नन्दलाल की तरह नही
मकान न खाली करने का मन बनाये
किरायेदार की तरह।
सतीप्रथा पर रुग्ण तर्क की तरह
पेट के गन्तव्य के पथिक हैं जहाँ,
वही हम खडे हैं
बहेलिया के मीठे गान की तरह
योजन की कृपाण लिये
और सामने हैं
जनता की कमजोर पसलियाँ

✯✯

बुद्ध और मीरा के नृत्य मे

अन्तर है यह
बुद्ध और मीरा के नृत्य मे
अदृष्ट मौन पावस है एक
आर्द्र बनाती है जो भीतर भीतर नित्य
विस्मृत कर देह के आदिम राग को।
मीरा का नाच
मिल गयी हैं जिसे
असीम आकाश की आँखे।
नही लौटी है कोई नदी आज तक
जिसके उपवन में प्रवेश कर
बह रही है तृण तृण और कण कण को-
तुष्ट कर अनवरत उदासीन द्वेषी और प्रेमी
समानान्तर रेखा में हैं जहाँ।
आँसू हो जाते है ओझल
जब हो जाते हैं बहुत बडे।
हो जाता है नृत्य बिल्कुल चुप बडा होने पर।
जहाँ सुलगती खामोशी नही
बल्कि चॉदनी और फूल बिछाये
खडा रहता है राजमार्ग।
तारों की तरह प्रतीक्षारत कुछ खोजता ।
वह पीडा है यह
जिसे पीडित नही,
अनुभव करता है दर्शक
जहाँ पत्थर रहता है पडा
प्रतीक्षा में राम की
अहल्या बनने के लिये
जल समाधि ले लेता है सूरज
शान्ति के महासागर में
राह खोजती पहाडी नदी सी
लुकती छिपती चेतना नहीं
अम्बर भर सन्नाटे से भरा
आनन्द होता है जहाँ।।



परिचय	सियाराम मिश्र
पिता का नाम	प० राम प्रसाद मिश्र
जन्म	सन् १९४२ ग्राम घरथनियाँ, जनपद खीरी उ०प्र०
सम्पर्क	मगला देवी मन्दिर गोला गोकर्णनाथ जनपद खीरी
कृतियाँ	वेदना, अनामा, आँगन की नागफनी, महासमर बेर भीलनी के, पचवटी से कर्बला दहेज बत्तीसी, भारत की विभूतियाँ भारत के सपूत, गायेन जस देखेन, धूप करे हस्ताक्षर
प्रकाश्य	नीम की डाल पर, ममता (महाकाव्य) सवालों के जगल में बुद्ध (खण्ड काव्य) निबन्ध सग्रह
उपलब्धियाँ	'साहित्य महोपाध्याय' उपाधि द्वारा (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) 'कवि शिरोमणि' उपाधि द्वारा अखिल भारतीय ब्रज साहित्य सगम (मथुरा) कौस्तुभ अलकरण द्वारा अनुरजिका कानपुर आकाशवाणी के अनुबन्धित गीतकार-कवि, दूरदर्शन से प्रसारित रचनाएँ। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित, कई विश्वविद्यालयों में लिखे गये लघु शोध भेंट वार्ताएँ।
सम्मान पुरस्कार	(उत्तर प्रदेश सरकार) हिन्दी सस्थान द्वारा तीन बार पुरस्कृत सम्मानित कबीर, जयशकर प्रसाद तथा मलिक मोहम्मद जायसी पुरस्कारों से अलकृत। अनेक सामाजिक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।